लामाओं के देश (तिब्बत) में



लामाओं के देश (तिब्बत) में

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड,

प्रयाग

१९४१

प्रथम संस्करण] [मूल्य ।=)

Published by
K. Mittra.
The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

लामाओं के देश (तिब्बत) में

तिब्बत का हाल

हमारे देश के उत्तर में सबसे बड़ा पहाड़ हिमालय है। उसमें तिब्बत बड़ा अजीब देश है। वह हज़ारों मील लम्बा-चौड़ा पठार है। वह जितना ऊँचा है उतना ही ठण्डा है। प्रायः बारहों महीने वहाँ के नदी-नालों और झीलों का पानी जमकर बर्फ़ बना रहता है। हड्डियों तक को कँपा देनेवाली वहाँ की ठण्ड में, बीच-बीच में, ज़मीन को फोड़-कर गर्म पानी के फ़व्वारे उठते रहते हैं। यह मानों पृथ्वी माता की तपी हुई स्नेहधारा है। इस पथरीले देश में न तो बहुत घास उगती है और न हरे-भरे मैदान ही हैं। फिर फूल होंगे ही कहाँ से? इसलिए तिब्बतियों की पूजा का सामान है फूलों के बदले पत्थरों की तरह-तरह की छोटी-छोटी बटियाँ। हमारे यहाँ जैसे बड़े-बड़े घने जङ्गल हैं वैसे वहाँ नहीं हैं, वहाँ तो छोटे-बड़े पहाड़ ही पहाड़ हैं। बाहर भी चारों ओर, आसमान को छूनेवाले, बर्फ़ से ढके हुए पहाड़ों का घेरा है। हाँ, भेड़ें, हिरन, जङ्गली गधे, सुरागायें, गीदड़, थोड़े-बहुत भेड़िये, चीते और कस्तूरी-मृग पाये जाते हैं। वहाँ बिना पूँछ के चूहों की बहुतायत है। ये जब पिछले पैरों के बल, कान खड़े करके, गम्भीरता से बैठ जाते हैं तब छोटे आकार के कङ्गारू से जान पड़ते हैं। मुर्ग़ाबियाँ, बगले और दो-चार तरह के अन्यान्य रङ्ग-बिरंगे पक्षी भी नदी-नालों और झीलों

के किनारे बैठकर पङ्ख फड़फड़ाते और कलरव करते रहते हैं। वहीं से तो जाड़ों में मुर्ग़ाबियाँ, आकाश-मार्ग से उड़कर, बङ्गाल में और अन्य प्रान्तों के नदी-नालों तथा झीलों के किनारे आ जाती हैं। चील, गीध एवं कुत्ते किस देश में नहीं होते ? तिब्बत के कुत्तों के बदन पर बड़े-बड़े काले-काले बाल होते हैं। उनकी आँखें डरावनी होती हैं। तिब्बत में बाघ और भालू भी होते हैं लेकिन बहुत कम। वहाँ उनकी तादाद इतनी कम है कि शायद ही कभी वे दिखाई पड़ते हैं।



बिना पूँछ के चूहे

तिब्बत के मनुष्यों की शकल-सूरत का क्या कहना ! सिर पर गोल टोपी, शरीर पर पाँच-छः ढीले-ढाले लटकते हुए कुर्त्ते और पैरों में अजीब शकल का बूट जूता। न तो वहाँ के लोग नहाते-धोते हैं और न दाँत ही माँजते हैं। उनकी देह पर मैल की मोटी सी तह जमी रहती है। तिब्बतियों

के बदन से ऐसी बदबू निकलती है कि दूसरे देश का कोई आदमी उनके पास खड़ा नहीं रह सकता। गन्दा रहना उनके लिए बड़े गर्व की बात है; मानो जो जितना गन्दा रहे वह उतना ही भाग्यवान् है। देह का मैल देखकर ही ब्याह के समय लड़की पसन्द की जाती है। तिब्बती लोग भूत-प्रेतों से बहुत डरते हैं। ये लोग भूतों को भगाने की अनगिनत तरकीबें जानते हैं। तिब्बत में जौ के सिवा और किसी अन्न की खेती नहीं होती। इतने ठण्डे और ऊँचे देश में दूसरी फ़सल होगी ही कौन सी? इसी से तिब्बतियों का मुख्य भोजन जौ, सुखाया हुआ कच्चा मांस, चाय और उसके साथ मक्खन है। लेकिन मक्खन बहुत दिनों का पुराना होना चाहिए। चालीस-पचास वर्ष का पुराना मक्खन बहुत बढ़िया माना जाता है। उसको तिब्बती लोग बड़ी तारीफ़ करके खाते हैं। वे लोग इस मक्खन के तरह-तरह के खिलौने बनाते हैं। इनके बनाने में जैसी कुछ कारीगरी की जाती है, उसी के अनुसार ये देखने लायक़ भी होते हैं। तिब्बती लोग दूध से बड़ी नफ़रत करते हैं। उन लोगों का चाय बनाने का तरीक़ा भी अजीब है। उनकी चाय में न तो दूध पड़ता है और न चीनी। वे मीठी चीज़ भी ज़्यादा नहीं पसन्द करते। चाय में सोडा, नमक और मक्खन पड़ता है। इन चीज़ों के साथ उबालकर जो विचित्र चाय बनाई जाती है उसको तिब्बती लोग, आँखें मूँद-मूँदकर, बड़े आराम से गरम-गरम पीते हैं।

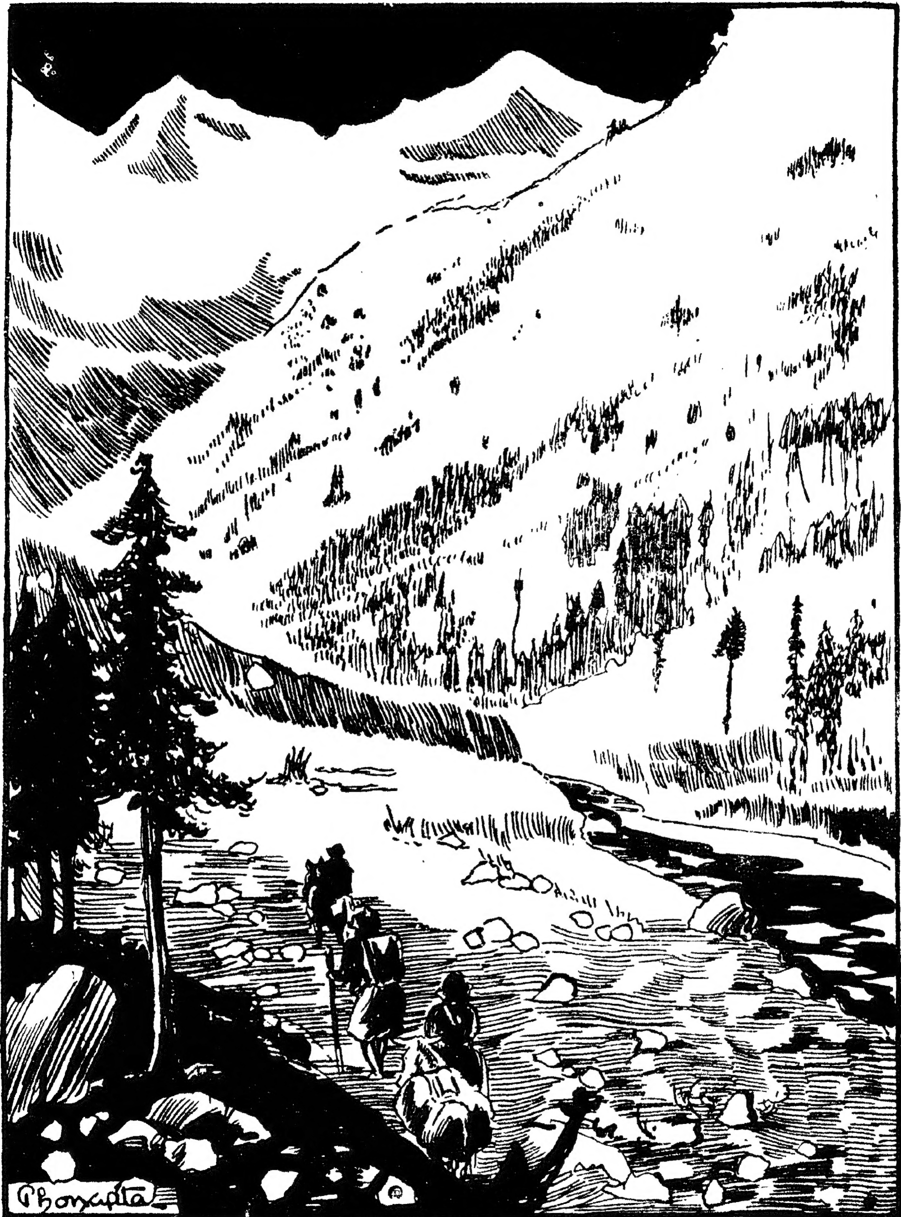
तिब्बत के लोग बौद्ध मत को मानते हैं। लामा या पुरोहित लोग ही देश के कर्त्ता-धर्त्ता हैं। इन पुरोहितों के मुखिया को दलाई लामा कहते हैं। दलाई लामा लासा में रहते हैं इसलिए लासा शहर तिब्बत

की राजधानी (लामाधानी) है। यह सब होते हुए भी तिब्बती लोग स्वाधीन हैं। वे लोग बड़े देशभक्त होते हैं। उन्हें अपने देश से इतना प्रेम है कि वे तिब्बत में किसी विदेशी का आना तनिक भी पसन्द नहीं करते। इसके लिए वे न जाने कितने प्रयत्न किया करते हैं। देश के भीतर और बाहर चारों ओर गुप्तचर दिन-रात चौकसी करते रहते हैं। गुप्तचरों की आँख बचाकर, पहाड़ों को लाँघकर, उस देश में जाना बड़ी जोखिम का काम है। लेकिन देश-विदेश की सैर हमें बहुत पसन्द है इसलिए एक दिन हम, गुप्त रूप से, तिब्बत के लिए रवाना हो गये। रास्ते में जो-जो कठिनाइयाँ पड़ीं और जो कुछ देखा-सुना उसका वर्णन किया जाता है।

तिब्बत के रास्ते में

उस समय अपने देश में बरसात ख़तम होने को थी। बर्फ़ के देश में भी ठण्ड की अधिकता नहीं हुई थी—पहाड़ी रास्तों में भी बर्फ़ का नाम न था। अपने नेपाली नौकर 'बहादुर' को साथ लेकर एक दिन हम दार्जिलिंग पहुँचे। तय यह कर लिया था कि सिकिम होकर तिब्बत जायँगे। दार्जिलिंग पहुँचकर कई तरकीबें सोचीं। वेष बदलने के लिए कई तिब्बती पोशाकें, एक जोड़ा बूट, एक काला चश्मा, गुलूबन्द, नेपाली खुकड़ी और पहाड़ी सफ़र के लायक़ एक लम्बी सी बाँस की लाठी इत्यादि ज़रूरी चीज़ें ख़रीद लीं। बहादुर यद्यपि हमारा विश्वासपात्र और बहुत पुराना नौकर था, फिर भी हमने अपना इरादा उसको नहीं बतलाया।

इसके बाद एक दिन तड़के वेष बदलकर बहादुर और उसके एक सिकिम-निवासी मित्र को साथ लेकर हम बड़ी-बड़ी गठरियों और पोटलियों सहित, तीन भोटिया टट्टुओं पर सवार होकर, रवाना हो गये। रास्ता कहीं नीचा है कहीं ऊँचा। बरसाती पानी की वजह से बेहद फिसलन है। रास्ते के दोनों ओर पहाड़ पर तरह-तरह के पेड़-पौधों और लताओं का घना जङ्गल है। पेड़ फूलों से लदे हैं। जङ्गली पेड़-पौधों और फूलों की उग्र अथवा मधुर गन्ध आर्द्र वायु के साथ आ रही है। चारों ओर छोटे-बड़े कई तरह के पहाड़ हैं—घने जङ्गल हैं; मानो हरा दुशाला ओढ़े हुए हों। किसी पहाड़ के सिर पर बर्फ़ की टोपी है; कोई नंगे सिर है, किसी के सिर पर बादलों का साफ़ा है और उन सबके ऊपर शान्त आकाश नीले



तिब्बत के रास्ते में

शामियाने की तरह जान पड़ता है। चारों ओर सन्नाटा है। बीच-बीच में झरने की आवाज़ और दूर या नज़दीक चिड़ियों की सुहावनी चहक सुन पड़ती है। हम लोगों के मन में खासी उमङ्ग है। ऐसा जान पड़ा कि यह सब देखकर तीनों टट्टुओं में भी फ़ुर्ती आ गई है। यों आनन्द से भरपूर होकर चलते-चलते हम लोगों ने तिस्ता नदी को पार कर लिया। अब कठिनाइयों के दर्शन हुए। नदी से कुछ दूर जाते ही चारों ओर अँधेरा करके बादल घिर आये। उनकी गड़गड़ाहट बड़ी भयङ्कर थी। आँधी-पानी के साथ-साथ बार-बार बिजली चमकने लगी। दूर पहाड़ पर कड़ककर बिजली गिरी। पल भर में ताण्डव नृत्य होने लगा। ऐसा जान पड़ा, मानो देवता हम लोगों पर रूठ गये हैं। या तो वे हम लोगों को हवा में उड़ा ले जायँगे या बिजली की आग में जला देंगे। आसपास कोई ऐसी जगह भी नहीं जहाँ जाने से बचाव हो सके। अन्त में, रास्ते के किनारे, एक बड़े से सागौन के नीचे हम छहों प्राणी एक दूसरे से सटकर खड़े हो गये। थोड़ी देर तक ज़ोर की आँधी चलती रही। इसके बाद वायु देवता अकस्मात् बादलों को दूर उड़ा ले गये। अब चारों ओर धूप चमकने लगी। काञ्चनजङ्घा की सुनहली चोटी दीख पड़ी।

इस पेड़ के नीचे, पोशाक बदलकर, हम तिब्बती बन गये। बहादुर और उसका साथी—जिसका नाम तो था लातुङ् लेकिन जिसकी अक़्लमन्दी देखकर हम जिसे 'बेवक़ूफ़' कहते थे—हमारी पोशाक देखकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। तिब्बती जासूसों की आँखों में धूल झोंकने के लिए ही हमने पोशाक बदली थी। तिब्बती जासूस सिकिम राज्य में भी चक्कर लगाते रहते हैं। अगर उन्हें किसी तरह यह पता

चल जाय कि कोई विदेशी उनके देश में जाने की कोशिश कर रहा है तो उसकी खैरियत नहीं। या तो वे उसे अँगरेज़ों के हवाले कर देंगे और यदि ऐसा न कर पावेंगे तो तिब्बत के निर्जन पहाड़ी मार्ग में मारकर खपा देंगे। वहाँ से हम लोग फिर आगे बढ़े।

रास्ता एक ही सा है। इसके बाद कई कोस चलने पर एक गाँव मिला। गाँव में बहुत थोड़े घर थे; आबादी भी अधिक नहीं थी। हमें नक़ली वेष में तिब्बती समझने की भूल गाँववालों ने की, लेकिन गाँव के कुत्तों ने हमें विदेशी समझकर निकाल बाहर करने में कमी नहीं की। गाँव में थोड़ा विश्राम करने की इच्छा थी किन्तु अभागे कुत्तों ने दम न लेने दिया। अब तय कर लिया कि आगे किसी गाँव में न जायँगे—बाहर ही बाहर निकल जाया करेंगे। नहीं तो ये कुत्ते ही हमारे विदेशी होने की पहचान करा देंगे। हम लोग टट्टुओं को दौड़ाकर गाँव के बाहर निकल गये। इसके बाद चलते-चलते सन्ध्या समय एक गाँव के पास पहुँचे लेकिन कुत्तों के डर के मारे गाँव के बाहर ही रात बिताने का प्रबन्ध किया।

सन्ध्या हो जाने के बाद आकाश में चन्द्रमा निकल आया। चारों ओर चाँदनी छिटक गई। सोचा था कि आराम से सोकर दिन भर चलने की थकावट दूर करेंगे—ठण्ढ भी ख़ूब लग रही थी; लेकिन नींद का आना तो रहा दूर, एक मिनट के लिए स्थिर होकर एक जगह बैठ या खड़े भी न हो सके। शहद की मक्खियों की तरह भनभनाते हुए झुण्ड के झुण्ड मच्छर चारों ओर से आ गये। ऐसा डर लगने लगा कि ये मच्छर कहीं हम लोगों को आसमान में न उठा ले जायँ। लेकिन 'बेवक़ूफ़' और 'बहादुर' भरपेट

भोजन करके खर्राटे लेने लगे। हमें सारी रात मच्छरों से युद्ध करना पड़ा।

सबेरे हमारी आँखें और मुँह फूलकर तोबड़ा हो गया। तबीअत भी बहुत खराब मालूम होने लगी। लेकिन जाने के सिवा उपाय ही क्या है। जाना ही पड़ेगा। रास्ता भी यहाँ से बहुत ऊबड़-खाबड़ है; बड़े-बड़े पहाड़ों पर चढ़ना और उतरना है। कहीं-कहीं पर रास्ता एक हाथ से भी कम चौड़ा है। उसके एक ओर तो आसमान को छूनेवाला पहाड़ है और दूसरी ओर बहुत गहरा खड्ड। बरसात के पानी और काई से रास्ते में बहुत ही फिसलन है। एक बार पैर फिसलते ही उस खड्ड में गिरने पर तिब्बत के बदले यमलोक पहुँच जायँगे। सबेरे बहादुर और बेवक़ूफ़ को धकियाकर रसोई का प्रबन्ध करने के लिए कहा। दोनों ने विचित्र मांस पकाया। रास्ते के किनारे जो जङ्गली पत्ताबहार के पेड़ थे उनके पत्ते और पका हुआ मांस, साथ-साथ हर एक के लिए एक-एक प्याला चाय भी बनाई गई। किन्तु हमने उस मांस को छुआ तक नहीं। चाय के साथ पावरोटी खाकर पेट भर लिया। उन दोनों ने डटकर वह मांस, चाय और पावरोटी खाकर पेट भरा और डकार ली। घास-पात खाने से टट्टुओं का भी पेट भर गया। इसके बाद गठरी इत्यादि बाँधकर हम लोग रवाना हुए। लेकिन उस रास्ते में टट्टुओं पर सवार होने की हिम्मत न हुई। उन पर हम लोगों ने गठरी-मोटरी ही लाद दी।

उस ऊँचे-नीचे फिसलनवाले रास्ते पर तीनों आदमी, टट्टुओं की लगाम खींचते हुए, बड़ी सावधानी और कठिनाई के साथ चल रहे हैं। हिमालय की ठण्ड है; फिर भी परिश्रम के मारे सारा शरीर

पसीने से तर हो गया। प्यास के मारे गला सूख गया। बोतल में भरा पानी साथ में था। उसमें से एक-एक घूँट पानी पीकर प्यास बुझाई। रास्ते में, बीच-बीच में, दो-चार बटोही मिलने लगे। वे सभी सिक्किमी हैं। सिर पर गुँथी हुई चोटी, बदन पर ढीला-ढाला कुर्ता और पैरों में बिना फ़ीते के बूट पहने गश्त लगानेवाले एक-दो पुलिस के सिपाही भी मिले। लेकिन इन लोगों को धोखा देने में हमें तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। 'कहाँ जाते हो?' यह पूछने पर कह देते थे कि "हम लोग ऊन के रोज़गारी हैं। पारी गाँव में ऊन लेने जा रहे हैं।" पारी ठीक उस जगह है जहाँ तिब्बत और सिक्किम की सीमा मिलती है। बड़ी कठिनाई से सारा दिन चलते-चलते सन्ध्या समय हम लोग एक पहाड़ पर पहुँचे। नीचे चुम्बी नाम की उपत्यका है—बहुत दूर तक बिछा हुआ एक गहरे सब्ज़ रंग का गलीचा सा। दूर पहाड़ की चोटी पर उस समय सूर्यदेव बैठे हुए थे। उनकी लाल आभा में उपत्यका बड़ी सुहावनी लग रही थी। शरीर थका हुआ और भूख से व्याकुल है। अब एक पग भी चलने की शक्ति नहीं; लेकिन पहाड़ पर रात बिताने की सुविधा न देखकर समय रहते चटपट नीचे उतरकर एक पेड़ के नीचे डेरा डाल दिया।

बहादुर ने सूखी लकड़ियाँ लाकर आग जलाई। बेवक़ूफ़ मांस काटने-कूटने लगा और हम जूते खोलकर टट्टुओं के पास खड़े हो स्थान को अच्छी तरह देखने लगे। चारों ओर बड़े-बड़े पेड़, झाड़ियाँ, जङ्गल और लम्बी-लम्बी घास थी। दूर-दूर पर धुँधले से पहाड़ों की क़तार थी। ऐसा जान पड़ता था मानों दैत्यों का झुंड हाथ पकड़े खड़ा है। आकाश में और उन दैत्यों के सिर पर बहुत सा

अबीर गिराकर सूर्यदेव चुपचाप खिसक गये। दूर एक पेड़ के ऊपर कुछ पक्षियों के कलरव के अतिरिक्त और किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं देता। सामने जङ्गल था। घास की नोकों पर अकस्मात् जोंकें देख पड़ीं। एक-दो नहीं—तीन-चार सौ! वे कलाबाज़ी खाती हुई सङ्गीनधारी पलटन की भाँति चारों ओर से हम लोगों को घेरती आ रही थीं। सत्यानाश हो गया। हम लोग समझते थे कि हमारे गाँव में ही ये छोटी जोंकें हैं; किन्तु यहाँ तो उन्हीं का राज्य है। हमने बहादुर और बेवक़ूफ़ से चिल्लाकर कहा कि होशियार हो जाओ! किन्तु वे लोग बेखटके भोजन बनाने लगे। हम वहाँ से थोड़ी दूर हट आये। किन्तु जायँगे कहाँ? वहाँ भी जोंकें थीं। जोंकें रक्त पीने के लोभ से झाड़-झंखाड़ में से बाहर निकलने लगीं। इसके बाद—कहने में भी देह काँपने लगती है—देखते क्या हैं कि हमारे पैरों में कोई पाँच जोंकें चिपट गईं। उधर तीन टट्टू घबराकर उछलने लगे। अब बहादुर और बेवक़ूफ़ भी भोजन बनाना छोड़-छाड़कर इधर-उधर भागने लगे। उनके हाथों में भी जोंकें चिपट गईं। कह नहीं सकते, हम लोगों की दशा देखने से जोंकों को आनन्द हो रहा था कि नहीं। हाँ, वे चारों ओर कूद-फाँद ज़रूर रही थीं। नमक लगाने पर जोंकों ने सब को छोड़ दिया। हमने चटपट जूते पहन लिये। समझ में न आया कि टट्टुओं की रक्षा के लिए क्या किया जाय। उतनी देर के लिए तो जोंकों ने हमें छोड़ दिया, किन्तु यहाँ रात को सोवेंगे किस तरह? निश्चय किया कि पेड़ पर चढ़कर रात बितावेंगे और टट्टुओं को खोल देंगे। किन्तु वृक्ष पर नहीं चढ़ना पड़ा; तीन ऊँची ऊँची चट्टानों पर हम तीनों जा बैठे। बहादुर और बेवक़ूफ़ खा-पीकर

बेखटके बड़े आराम से सो गये। किन्तु तीनों टट्टुओं की और हमारी बड़ी दुर्गति हुई। टट्टू सारी रात इधर से उधर भागते रहे और हमें जागते-जागते रात बीती। मच्छरों की कृपा से हमारी नाक की नोक फूल गई।

लगातार दो-तीन रातें जागते कटी थीं, इससे हमारा मिज़ाज रूखा हो गया। उस समय भी चारों ओर थोड़ा-थोड़ा अँधेरा था। हमने बहादुर और बेवक़ूफ़ को खींचकर जगाया। किसी तरह, दो-तीन दिन में ही सीमान्त में पहुँचना चाहिए। नहीं तो जाड़े का मौसिम समीप ही था---किसी दिन बरफ़ के गिरने से सीमान्त के दर्रे के बन्द हो जाने का खटका था। बहादुर और बेवक़ूफ़ आराम से ख़र्राटे ले रहे थे। किन्तु हमारे ठेलने से उनकी नींद टूट गई। बड़े बेमन से उठकर गठरी-पोटली बाँधी गई, फिर टट्टुओं को पकड़ लाये। अब फिर चलने की धुन है। उस दिन रसोई बनाने का प्रबन्ध नहीं किया।

रास्ता चलते-चलते पावरोटी खाकर भूख मिटाई। इसके बाद अपने हिसाब से चलकर तीन दिन में जहाँ पहुँचे वहाँ से सीमान्त बहुत दूर नहीं था---कुल बारह कोस रह गया था। सीमान्त के, आकाश को छूनेवाले, बड़े पहाड़ों की क़तार बादलों की तरह सामने ही है। जिस प्रदेश से होकर हम इधर कई दिनों से गुज़रे हैं उससे यह जगह बिलकुल जुदा है। गज़ब की ठण्ड है। एक तरह से पेड़-पौदे हैं ही नहीं। सब कुछ नीरस है, मिट्टी सख़्त है। जो दो-चार पेड़-पौदे हैं वे भी दूर-दूर बिखरे हुए हैं। किसी में पत्तियाँ नहीं हैं, केवल शाखाएँ हैं। ऐसी कड़ाके की ठण्ड में पेड़-पौदे होंगे ही किस तरह? इसके सिवा इस देश में पानी की बूँद का भी नाम नहीं। बादलों को

हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ रोक लेती हैं, इससे इस ओर उनका गुज़र नहीं होता। भूले-भटके बादल आ भी जाते हैं तो उनका पानी मारे ठण्ड के जमकर बर्फ़ के रूप में गिरता है। चौथे दिन सन्ध्या के लगभग जहाँ पहुँचे वहाँ एक ख़ाली मुसाफ़िरख़ाना था। उसी में रात बिताने का निश्चय किया। उस दिन जैसी करारी भूख लगी थी वैसी ही नींद भी। खा-पीकर सो गये। दूसरे दिन सबेरे नींद टूटने पर देखा कि चारों ओर सफ़ेद रूई के फाहे-से बिखरे पड़े हैं। ऐसा जान पड़ा मानों इस ठण्ड के देश में किसी धुनिये ने बड़ी सी रज़ाई भरने के लिए रुई को धुनकर चारों ओर बिछा दिया है। पहाड़ों की चोटियों पर भी उसी रुई का ढेर लगा है। यह दृश्य लगता तो बहुत ही भला था, किन्तु हमारा तो दिल दहल गया। सब चौपट! ठण्ड का बुड्ढा हमारे जाने से पहले ही पहाड़ को घेरकर बैठ गया। पहाड़ी दर्रा बहुत जल्द बन्द हो जायगा। किन्तु हमने आशा नहीं छोड़ी। जब घर से निकले हैं तब तिब्बत ज़रूर जायँगे।

हम लोग जिस रास्ते से आ रहे थे वही प्रत्येक पहाड़ पर घूम-फिर-कर, चढ़ता-उतरता तिब्बत की सरहद को चला गया है। सब इसी रास्ते आते-जाते हैं। इस कारण इस रास्ते पर चलने से पग-पग पर पकड़े जाने का डर था। लेकिन सामने एक गाँव था। दार्जिलिंग में ही हमने सुना था और बेवक़ूफ़ ने भी कहा कि उस गाँव से एक और रास्ता सरहद को जाता है। इस रास्ते से जाने में पकड़े जाने का डर कम है; क्योंकि अब जाड़े का मौसम आ रहा है। गर्मी के मौसम को छोड़कर उस रास्ते से कोई आता-जाता नहीं। रास्ता जैसा सूनसान है वैसा ही ऊँचा-नीचा है। उसको पार करना भी सहज नहीं। उस रास्ते में

टिकने को कहीं जगह नहीं। वहाँ एक पेड़ तक मिलना कठिन है। फिर जाड़े के मौसिम में तो वह बर्फ़ से बेतरह ढक जाता है। लेकिन जो लोग हमारी तरह सरहद के पहरेदारों की दृष्टि से बचना चाहते हैं उनके लिए इस रास्ते के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। हमने इसी रास्ते से जाने का इरादा किया। लेकिन इसके पहले ही चौकन्ना हो जाना आवश्यक है। क्योंकि शायद इसी गाँव में दो-चार तिब्बती जासूस जाल फैलाये हुए बैठे हों।

आज तक हमने बहादुर और बेवक़ूफ़ को अपना इरादा नहीं बतलाया था। वे लोग यह समझे बैठे थे कि हम थोड़े दिनों में ही देश लौट जायँगे, हँसी-ख़ुशी से खायेंगे-पियेंगे। लेकिन अब उन लोगों को सच बात बतलाये बिना काम नहीं चलने का। इसी से हमने बहादुर को सब बातें दिल खोलकर बतला दीं। बात सुनते ही उसकी छोटी छोटी आँखें बुँदिया की तरह गोल हो गईं। उसने कहा—बाबू, आप कहते क्या हैं?

हमने कहा—"तुम्हें इनाम में सौ रुपये देंगे। लासा में तुम्हारा बड़ा भाई और भावज है। उनके साथ बहुत दिन बाद तुम्हारी भेट हो जायगी। वे लोग तुम्हारी बड़ी आव-भगत करेंगे, भरपेट गोश्त खिलावेंगे।" बहादुर हमारा पुराना नौकर है। वह हमको मानता भी बहुत है। हमने बचपन में एक दिन उसकी चुटिया काट डाली थी, फिर भी वह हमसे चिढ़ा नहीं। वह चटपट तैयार हो गया। लेकिन बेवक़ूफ़ ने गड़बड़झाला किया। पहले तो वह किसी तरह राज़ी न हुआ; कहने लगा—"जान प्यारी या रुपया?" लेकिन उसकी मदद बिना हमारा नक़ली वेश में तिब्बत पहुँचना असम्भव था। कठिनाई

में पड़कर हमने उसे दो सौ रुपये इनाम देना चाहा; लेकिन वह पक्का बेवक़ूफ़ निकला। इतना इनाम लेने को भी तैयार न हुआ। अन्त में और भी पच्चीस रुपये का लोभ देने पर वह ऊपर से तो राज़ी हो गया, लेकिन मन में उसको शिकायत थी। रहा करे, हमारा तो काम बन गया।

अब अपने नक़ली वेश को पक्का करने का मन्सूबा किया जिससे कहीं कुछ कमी न रह जाय। हमारा इरादा यह था कि बेवक़ूफ़ को अपना मालिक बतावेंगे और हम दोनों उसके कुली बनकर चलेंगे। वह टट्टू पर सवार होकर चलेगा और हम उसकी गठरी-पोटली आदि लादे हुए उसके पीछे-पीछे पैदल चलेंगे। ऐसा करने से कोई हमें आसानी से न पहचान पावेगा कि यह परदेशी है। हमारा इरादा सुनकर वे दोनों बेतरह हँसने लगे। हमने कहा—"होशियार रहना। देखो बेवक़ूफ़, कभी भूलकर भी लोगों के सामने हमें 'बाबू' मत कहना। किसी काम के लिए हमसे हुक्म भी मत माँगना। अपनी मर्ज़ी से चलना-फिरना। लोगों के पूछने पर कह देना, तीर्थ करने जा रहे हैं।" लेकिन मामले को भली भाँति समझने में ही कुछ समय लग गया। अन्त में ख़ुश होकर उसने "बहुत अच्छा" कहा। अब बेवक़ूफ़ की सवारी के लिए एक टट्टू रखकर बाक़ी दो टट्टू बेच देने या उनके बदले एक खच्चर और दो जीवों के लिए बिचाली तथा तीनों आदमियों को सात दिन के लायक़ खाने-पीने का सामान मोल लाने को बेवक़ूफ़ और बहादुर को सामने के गाँव में भेजा। जाते समय उन लोगों से कह दिया "होशियार रहना! किसी को हमारा इरादा मत बतला देना।" वे दोनों ही सिर हिलाकर बड़ी ख़ुशी से टट्टुओं पर सवार हो चटपट गाँव की ओर बढ़े। हमने इसी बीच लेप की शीशी निकाली

और अपनी पलकों पर थोड़ा सा लेप लगा दिया जिससे लोग देखकर समझें कि आँखें उठ आई हैं। आँखों का उठना तिब्बतियों की मामूली बीमारी है। चालाकी को और भी पक्का करने के लिए रंगीन चश्मा लगा लिया। इससे आँखों की रक्षा का सुभीता हो गया। कड़ी धूप में बर्फ़ के ऊपर चलते रहने से एकाएक आँखें कमज़ोर हो जाती हैं, कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। इसे बर्फ़ौंधी (बर्फ़ की चकाचौंध लगने से कुछ भी न सूझ पड़ना) कहते हैं। लेकिन थोड़ी देर तक छाया में आराम करने के बाद फिर सब कुछ सूझने लगता है। रंगीन चश्मा लगाने से बर्फ़ीले रास्ते में मुसाफ़िर को इस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। जो हो, कोई दो घंटे में बहादुर और बेवक़ूफ़ गाँव से टट्टू के ऊपर लादकर एक बोझा बिचाली और हम लोगों के लिए ख़ूराक ले आये। उनके चेहरे देखने से मालूम हो गया कि किसी ने उन पर किसी प्रकार का शक नहीं किया।

दूसरे दिन बड़े तड़के, जब कि गाँववाले जागे नहीं थे, और आकाश में पूर्व ओर शुक्र तारा फीका पड़ गया था, हम लोग चोर की तरह चुपचाप गाँव को पार कर गये। इस गाँव में पुलिस का कड़ा पहरा रहता है। पहरेवाले सारी रात जागते रहने के बाद, मालूम पड़ता है, उस समय सो गये थे। इसी से हम लोगों को नहीं देख पाये। हम लोग चटपट पहाड़ की ओट में हो गये और दूसरे रास्ते पर आगे बढ़े।

चलते-चलते फिर एक जगह तिस्ता नदी मिली। वहाँ पर उसका रूप बड़ा भयावना था। वह बड़े ज़ोरों से गरज रही थी। नदी, रास्ते के बहुत नीचे होकर, पत्थरों पर पछाड़ खाती, पानी के छींटों से धुआँधार बनाती पाताल की ओर दौड़ी जा रही थी।

धारा के धक्के खाकर, बीच-बीच में, दो-एक बड़े-बड़े पत्थर हिल जाते और धमाके के साथ इधर-उधर हट जाते थे। ऐसा मालूम होता था कि नदी बड़े भारी पहाड़ को ही सिर पर रखकर बहा ले जाना चाहती थी। बेवक़ूफ़ को इस तरफ़ का कुछ हाल मालूम था। उसने बताया कि कोई भारी क़सूर करने पर अपराधी को ऊपर से इस नदी में गिरा दिया जाता था। यह पुराने ज़माने की बात है। लेकिन इस समय भी शायद उन्हीं अभागे लोगों का करुण आर्तनाद तिस्ता की इस गरज के साथ पहाड़ों में गूँजता रहता है। किन्तु हम लोगों ने नदी की गंभीर गर्जना के सिवा और कुछ नहीं सुना। फिर भी मन उदास हो गया।

थोड़ी देर चलने पर हम एक अजीब जगह आ पहुँचे। सामने १८ हज़ार फ़ुट ऊँचा पहाड़ मिला। हमारा रास्ता घूम-फिरकर उसकी चोटी पर होता हुआ गया है। कहीं पर भी पेड़-पौधे का नाम-निशान न था। उस पहाड़ की चोटी पर नज़र पड़ते ही हम लोगों के दिल बैठ गये। इतना ऊँचा चढ़ने में जितनी मेहनत पड़ती है, ऊपर पहुँचने पर होश-हवास ठीक रहना उतना ही कठिन है। और तिब्बत जाने के लिए पहाड़ों पर चढ़ना और उतरना एक मामूली बात है। यह पहाड़ मानो तिब्बत का एक मोटा सा पाया है। हम लोग उसी पाये के सहारे धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगे लेकिन बहुत दूर तक नहीं जा सके; चढ़ाई के परिश्रम के मारे साँस फूलने लगी। चलते-चलते सुस्ताने के लिए बीच-बीच में हम लोग रास्ते में विश्राम करने लगे। लेकिन सूर्य भगवान् को थकावट का नाम नहीं। वे उन आकाशस्पर्शी पहाड़ों के मस्तकों को लाँघकर मुसकराते हुए अस्ताचल

में विश्राम करने के लिए चले जा रहे हैं। यहाँ हम लोग सुस्ताते रहे और वहाँ वे पहाड़ों की ओट में जा छिपे। नीले आकाश में और पहाड़ों की चोटियों पर उनके मुँह की मुस्कराहट ललाई के रूप में अंकित रह गई। थोड़ी देर में वह भी जाती रही। सामने आ गई अँधेरी रात। हम लोगों का चलना भी बन्द हो गया। उसी खुली जगह में, खुकड़ी निकालकर, विश्राम करने का प्रबन्ध किया गया। ईंधन न होने से रसोई नहीं बन सकी। बेवक़ूफ़ गाँव से, ठंड में जमाई हुई, हिरन की पिछली टाँग ख़रीद लाया था। भूख के मारे उसी का मांस काट-कर, नमक मिलाकर, कच्चा ही खा लिया। एक प्याला गर्म चाय के लिए तबीयत तरसने लगी। सर्दी भी गहरी पड़ रही थी। वह मानो हड्डियों के भीतर घुसकर छुरी सी भोंक रही थी। लेकिन उपाय ही क्या था। एक पहाड़ की आड़ में दोनों सवारियों को बाँध दिया और हम तीनों अच्छी तरह कंबल ओढ़कर एक छोटी सी गुफा के मुँह में एक-दूसरे से सटकर लेट गये। चारों ओर अँधेरा है। आसमान में तारे चमक रहे हैं और उस कड़ी सर्दी में आसमान मानों रह-रहकर काँपने लगता है। दूर से तिस्ता के बहने का शब्द लगातार सुन पड़ता था। वही लोरी सुनते-सुनते हम लोग न जाने कब सो गये।

बहुत रात बीते एकाएक हम लोगों की नींद टूट गई। उठकर देखा, ज़ोरों का तूफ़ान आ गया है। साथ में बर्फ़ गिर रही है। डर लगा कि यदि सारी रात यही दशा रही तो रास्ता तो मुँद ही जायगा और हम लोग भी बर्फ़ के नीचे दबकर मर जायँगे। बेवक़ूफ़ तूफ़ान के देवता को मनाने के लिए मन्त्र पढ़ने लगा। बहादुर हाथ जोड़कर भगवान् से प्रार्थना करने लगा। इन दोनों भक्तों के बीच में बैठे हुए

हम तूफ़ान थमने की बाट जोहने लगे। उन दोनों के मन्त्र पढ़ने और प्रार्थना करने पर भी सारी रात तूफ़ान और बर्फ़ ने पिण्ड न छोड़ा। ग़नीमत यही थी कि बर्फ़ ज़्यादह नहीं गिरी। दूसरे दिन तनिक उजाला होने पर पृथ्वी की एक नई सूरत नज़र आई। नीचे से लेकर ऊपर तक पहाड़ बिलकुल सफ़ेद हो गया। जिधर देखो उधर ही सफ़ेद सफ़ेद बर्फ़। मानों कोई बाबा आदम के ज़माने का बुड्ढा लाठी के सहारे रात को पहाड़ से उतर आया है। अब पल भर भी ठहरने की फ़ुरसत नहीं है। ठण्ड का बुड्ढा किसी भी समय पहाड़ी रास्ते को बर्फ़ से बिलकुल बन्द कर सकता है। वही कच्चा मांस चबाकर, दोनों सवारियों को बिचाली खिलाकर, हम लोग रवाना हो गये।

थोड़ा रास्ता चल पाये थे कि चारों ओर सुनहरी धूप फैल गई। बरफ़ के ऊपर धूप पड़ने से सात रङ्गों की खिलवाड़ शुरू हो गई। उस बर्फ़ की बहार का क्या कहना है। ऐसा जान पड़ा मानों किसी ने पत्थरों पर, नीचे, गुफा के मुँह में और रास्ते के मोड़ों पर तरह तरह की शकलें बना दी हैं। किन्तु यह दृश्य देर तक नहीं रहा; कड़ी धूप लगने से बर्फ़ गलकर पानी की शकल में चारों ओर बहने लगा। हम तीनों मुसाफ़िर लाठी के सहारे बर्फ़ से फिसलनदार बने रास्ते पर सावधानी से ऊपर चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते पैर फिसल जाने से बेवक़ूफ़ एकाएक गिर पड़ा। उसकी यह दुर्गति देख हमें हँसी आ गई। अभी हमारा हँसना रुका नहीं था कि हम भी बर्फ़ पर फिसलकर आठ-दस हाथ नीचे जा गिरे। पास ही सैकड़ों हाथ गहरा खड्ड था। लेकिन क़िस्मत ने बचा लिया। उस रास्ते पर लगातार चढ़ने की कठिनाई को वही समझ सकता है जिसको कभी

ऐसे रास्ते पर चलना पड़ा हो। चढ़ते समय कमर से लेकर उँगलियों तक देह भारी जान पड़ती और दर्द होता है। खोपड़ी की बड़ी दुर्गति हो जाती है। इतनी प्यास लगती है कि तालू फटने सा लगता है। पास के गड्ढे से बर्फ़ का गला हुआ पानी पीने पर प्यास मिटी। हमारी इस दुर्गति के समय टट्टू ने और मुश्किल में डाल दिया। शायद बिचाली खाने से उसका पेट नहीं भरा था। रास्ते में दोनों ओर इधर-उधर बहुत ही छोटी-छोटी एक तरह की घास उगी हुई थी। बर्फ़ के नीचे छिपी रहने से हम लोगों ने उसे अब तक देखा नहीं था। बर्फ़ के गलते ही घास दिखाई देने लगी। टट्टू ने उस पर दो-चार मुँह मारे। अभी वह दूर नहीं गया था कि उसके मुँह से बहुत सा फेन बहने लगा। तकलीफ़ के मारे वह एक जगह ठहर न सका। उसकी हालत देखने से ऐसा मालूम हुआ कि अब वह थोड़ी ही देर का मेहमान है। पता न चला कि आख़िर एकाएक उसे क्या हो गया है। बेवक़ूफ़ था "जान पाँड़े"। उसने कहा, "यह घास बड़ी ज़हरीली होती है। इस देशवालों के न जाने कितने टट्टू, गोरू और भेड़ें आदि जानवर इस घास को खाने से इसी तरह मुँह से झाग बहाकर मर जाते हैं। लेकिन मैं इस बीमारी की दवा देता हूँ"। अब उसने चीनी की पोटली खोली और एक मुट्ठी चीनी निकालकर टट्टू को खिला दी। बस, बात की बात में टट्टू की तकलीफ़ हवा हो गई। न उसकी छटपटाहट रही और न रह गया झाग बहना। वह पहले की तरह रास्ता चलने लगा।

एक बात कहने की याद नहीं रही। उस समय हम लोग जिस ओर जा रहे थे वह न तो सिक्किम है और न तिब्बत ही। वह तो उन

दोनों देशों की सरहद का हिस्सा है। यहाँवालों का घर-द्वार कुछ भी नहीं है। यहाँ के लोग गर्मी के मौसिम में पहाड़ों पर भेड़ों और चमरगौओं को चराते फिरते हैं। इन्हीं पशुओं का मांस, दूध का मक्खन और जौ का आटा इन लोगों का मुख्य भोजन है। किन्तु इस ओर धान और जौ कुछ भी नहीं उपजता। ये लोग तिब्बत से ही जौ लाते हैं। कड़ी सर्दी के दिनों में ये लोग गाँवों में टिक जाते हैं सही, लेकिन उन गाँवों का क्या वर्णन किया जाय। और घरों का कहना ही क्या है। जान पड़ता है, मानों बड़ी बड़ी डिबियाँ पहाड़ पर एक जगह रख दी गई हैं।

उस दिन हम लोग पहाड़ पर दूर तक नहीं चढ़ सके। शाम के वक़्त रास्ते के पास एक टूटा-फूटा घर दिखाई पड़ा। वह ख़ाली पड़ा था। इसलिए हमने उसी में डेरा डाला। बहादुर ने चमरगौ का गोबर इकट्ठा करके आग जलाई। उसमें चाय के लिए पानी गरम किया; लेकिन गोश्त पकाने से पहले ही आग बुझ गई। इससे गरम चाय के साथ कच्चा गोश्त खाकर रह जाना पड़ा। फिर भी सभी ख़ुश थे। बेवक़ूफ़ ने कहा—सामने ही एक गाँव है। इस घर से कोई पाव मील की दूरी पर। पहाड़ की ओट में है, इससे यहाँ से देख नहीं पड़ता। वहाँ हमारा एक रिश्तेदार है।

हमने उसके मतलब को भाँप लिया। उससे कह दिया—होगा।

उसने कहा—जी हाँ, सो तो है ही। मैं अपने रिश्तेदार से भेंट करना चाहता हूँ।

हमने उसकी बात अनसुनी कर दी। दूसरी ओर मुँह फेरकर बैठे रहे। लेकिन उसने पीछा न छोड़ा; ख़ुशामद करके उसने दो घण्टे की

छुट्टी ले ही ली। उसके चले जाने पर हमको ऐसा मालूम पड़ा कि छुट्टी हरगिज़ न देनी चाहिए थी। अगर वह बातचीत में अपने रिश्तेदार को हमारा इरादा बतला दे तब तो सब चौपट! लेकिन अब तो उसको वापस बुला लेने का कोई उपाय नहीं था। इतनी देर में वह शाम के अँधेरे में पहाड़ की ओट में पहुँच गया था। अब हम निहायत बेव़कूफ़ की तरह उसकी वापसी की बाट जोहने लगे। वे दो घण्टे हमारे लिए आठ घण्टे हो गये। घण्टे कितने ही क्यों न हों, समय ठहरता थोड़े है। इसी से समय पूरा होने पर बेव़कूफ़ लौट आया। लेकिन उसकी चञ्चलता देखने और उसके मुँह से शराब की बू आने से हमने समझ लिया कि इस अभागे ने झोंक में आकर हमारा सब हाल बतला दिया है। लेकिन अब हो क्या सकता था। चाहे जिस वक़्त पुलिस आ सकती है। उसका नाम बेवक़ूफ़ क्या यों ही रख दिया है! क्रोध में जी चाहने लगा कि इसकी पीठ पर अपनी चार हाथ लम्बी लाठी दे मारें। लेकिन विचार किया तो इसमें अपना ही नुक़सान जँचा। मारने से लाठी टूट जाने पर बिना लाठी के बर्फ़ पर चलने में हमीं को दिक़्क़त होगी। अब इस समय क्या करना चाहिए। पुलिस के हाथ से बच जाने पर भी रात को सो जाने पर तिब्बतियों के छुरा भोंक देने से मरना होगा। मरने का डर नहीं है। दुःख इतना ही रह जायगा कि मर जाने पर तिब्बत न पहुँच पावेंगे। अभागा बेवक़ूफ़ ख़ुद संकट को न्यौता दे आया। लेकिन वह हमें तरह-तरह से तसल्ली देने लगा। कहने लगा—"मालिक, हमारा रिश्तेदार बहुत अच्छा आदमी है। उसके मुँह से एक भी बात ज़ाहिर नहीं होती। वह आपका इरादा किसी को न बतलावेगा। उसकी बहन के साथ मेरा ब्याह होने की बात चल रही है। मैं कह आया हूँ

कि जो वह किसी को हम लोगों का हाल बतला देगा तो मैं किसी तरह उसकी बहन के साथ शादी न करूँगा। आप बेखटके रहें।" हमारे धमकाने पर वह चुप हो गया। रात को हमें नींद नहीं आई। खुखड़ी हाथ में लिये, एक जगह बैठे-बैठे, हम सारी रात पहरा सा देते और पहर गिनते रहे। हिमालय की सुनसान रात थी। बीच-बीच में पहाड़ों पर बर्फ़ीली हवा हरहरा रही थी। दूर से दो-एक हायनों का अट्टहास ज़रूर सुनाई दे जाता था। घर के बाहर किसी प्रकार की खट-खुट होते ही कान खड़े करके हम सोचते कि कोई आता है। लेकिन क़िस्मत अच्छी थी। रात को कोई भी नहीं आया। पिछले पहर पतले कुहरे में होकर शुक्र तारे को आकाश में देखते ही सभी को जगाकर थोड़ी देर में हम रवाना हो गये।

हमारे भाग्य में तो अपार दुःख लिखे हुए हैं। अचानक चारों ओर घना कुहरा फैल गया। उसके भीतर होकर कई हाथ की दूरी तक ही देख सकते थे। रह-रहकर बरफ़ गिरने लगी। लक्षणों से मालूम हुआ कि बर्फ़ानी तूफ़ान आवेगा। फिर भी हिम्मत करके हम लोग ऊपर चढ़ने लगे। बड़ा मुश्किल रास्ता था। पैरों ने चलने से जवाब दे दिया। और सामने है सीधा ऐसा खड़ा रास्ता मानो दीवाल के सहारे एक लकड़ी का तख़्ता खड़ा कर दिया गया हो। खच्चर और टट्टू भी दो बार कई हाथ नीचे फिसल गये, इससे उन पर लदी गठरियाँ-पोटलियाँ भी नीचे गिर गईं। चाय, आटे और चीनी की पोटलियाँ बर्फ़ के ऊपर गिर पड़ीं। उनको उठाकर फिर इकट्ठा करके चलना शुरू कर दिया। लेकिन वह कुछ मिट्टी का रास्ता अथवा समतल मैदान नहीं था। थोड़ी दूर जाते ही सब लोग थक गये। विश्राम करने के लिए

सहारा ढूँढ़ने से पहले ही अचानक हरहराता हुआ बर्फ़ानी तूफ़ान आ गया। उस समय हम लोग बारह हज़ार फ़ुट ऊपर थे। इतनी ऊँचाई पर पहुँचने से पहाड़ी बीमारी (Mountain sickness) हो जाती है। हम लोग भी उससे नहीं बचे। सबके सिर में दर्द होने लगा; कानों में भन्नाहट होने लगी। बर्फ़ानी तूफ़ान से बचाव करने के लिए भी कोई तदबीर न कर पाये। आगे-पीछे, दहने-बायें कहीं ज़रा सा भी सहारा लेने को जगह नहीं थी। उस गाँव में लौट जाने का भी कोई उपाय नहीं था। इस दशा में बहादुर और बेवक़ूफ़ दोनों रोने लगे। खच्चर और टट्टू भी घबरा गये। हम भी कुछ सोच-विचार करने लायक़ नहीं रह गये। चारों ओर बर्फ़ गिर रही थी। सबकी देह पर और सिर पर बर्फ़ ही बर्फ़ थी। बर्फ़ की बौछार के मारे आँखों से काम लेना कठिन हो गया और तूफ़ान के गर्जन ने कानों में ताले लगा दिये। कोई किसी की बात सुन न पाता था और कहने के लिए था ही क्या। उस भयानक ठण्ड में हम लोग जम न जावें, इसके लिए उस तूफ़ान की परवा न करके हम लोग पहाड़ पर चढ़ने लगे। लेकिन वह भी मुश्किल हो गया। रास्ते में घुटने भर तक बर्फ़ जम गई है। सभी ने प्राणों की आशा एक तरह से छोड़ दी। ऐसा जान पड़ने लगा कि सभी को बरफ़ के नीचे दबकर मर जाना पड़ेगा। लेकिन जिस तरह एकाएक बर्फ़ानी तू .ान आया था उसी तरह चला भी गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। कुहरा भी धीरे-धीरे कम हो गया। इससे चारों ओर का दृश्य साफ़ दिखाई देने लगा। सामने ही कुछ दूरी पर एक घर दिखाई दिया। बहादुर और बेवक़ूफ़ को तरह-तरह की बातों में भुलाकर हम बर्फ़ की ढेरी को ठेलते हुए उसी घर की ओर बढ़ने लगे लेकिन खच्चर

एकाएक इतना कमज़ोर हो गया कि चलते-चलते गिर पड़ने लगा। सवारी अगर यहाँ मर जायगी तो हम लोगों को लगभग आधा सामान छोड़ जाना पड़ेगा। इससे कठिनाई और भी बढ़ जायगी। अगर उसे सुस्ताने को मिल जाय तो शायद वह बच जाय, इसी आशा से हम उसे ठेलकर ऊपर पहुँचाने लगे। इसके बाद जब हम घर के पास पहुँचे तब दिन ढल गया था, लेकिन घर के सामने पहुँचने पर उसकी जो हालत देखी उससे बहुत निराशा हुई। ऊपर छप्पर बहुत ही कम रह गया था। चारों दीवालें गिर पड़ी थीं। ऐसा मालूम हुआ मानो लकड़ी के कई मोटे खूँटों पर खड़ा हुआ वह अब तक हमारा ही रास्ता देख रहा था। हम लोगों के जाते ही वह बिलकुल बैठ जायगा। जो हो, उसके भीतर पहुँचकर देखा कि एक कोने में सूखे गोबर का ढेर लगा हुआ है। ठण्डे मुल्क में यह बड़ी क़ीमती चीज़ है। ज़मीन पर गठरी-पोटली रखकर बहादुर ने गोबर में आग लगाई। इसके बाद बर्फ़ का एक ढेला लाकर देग़ची में डाल दिया। यह चाय के लिए पानी गर्म होने लगा। इसी बीच सब लोग आग के चारों ओर बैठकर हाथ-पाँव सेंकने लगे। उधर ख़च्चर के प्राणों पर बन आई थी। जब वह खड़ा न रह सका तब एकाएक लेट गया। हालत देखकर समझ लिया कि अब यह न बचेगा लेकिन पता न था कि उस बीमारी का भी डाक्टर और दवा वहीं मौजूद है। थोड़ी देर में चाय बन जाने पर बेवक़ूफ़ ने एक प्याला चाय ख़च्चर को पिला दी। चाय पीते ही वह चङ्गा होकर खड़ा हो गया और ख़ुशी से दुम हिलाकर कूदने-फाँदने लगा।

दवा को असर करते देखकर बेवक़ूफ़ शेख़ी के मारे सिर हिलाने और तालियाँ पीटने लगा। बहादुर हँसी के मारे लोट-पोट हो गया।

मामला देखकर हम भौचक्का से हो गये। इस वक़्त से बेवक़ूफ़ की एक और उपाधि बढ़ी—टट्टू का डाक्टर।

अगले दिन जिस समय हम लोग वहाँ से रवाना हुए उस समय थोड़ी-थोड़ी बर्फ़ गिर रही थी। आसमान की हालत भी अच्छी न थी। चाहे जब तूफ़ान उठ सकता था। इसी लिए हम लोग फुरती से चलने लगे और दोपहर के लगभग एक और ख़ाली घर में आ पहुँचे। किन्तु वहाँ ठहरे नहीं। सामने ही दर्रा है। उसको, बरफ़ से बिलकुल बन्द हो जाने के पहले ही, पार करना है। नहीं तो तिब्बत में पहुँचना तो दूर रहा, सिकिम में भी लौटकर पहुँचने का रास्ता नहीं रहेगा। उस सुनसान जगह में बर्फ़ के बीच बन्दी होकर ठण्ड और भूख की मार से सबको मर जाना पड़ेगा।

चलते-चलते दिन डूबने को हुआ। पहाड़ पर कोई मील भर के अन्तर पर एक और घर देख पड़ा। अब क़ायदे से बरफ़ानी तूफ़ान शुरू हो गया। रास्ते में कमर तक बरफ़ जमा हो गई। भूख, प्यास और ठण्ड के मारे सभी पस्त हैं। देखते-देखते रास्ते में छाती बराबर बरफ़ हो गई। इस संकट के समय एकाएक बहादूर को बरफौंधी हो गई। उसे कुछ दिखाई न देता था। दूसरा उपाय न देख हमने अपना रंगीन चश्मा उसको लगा दिया। इसके बाद हम तीनों आदमी, एक के पीछे एक, बरफ़ के ढेर को दोनों हाथों से हटाते हुए बड़ी कठिनाई से चढ़ने लगे और शाम हो जाने के थोड़ी देर बाद उस घर में पहुँचे। भाग्य से इस घर की हालत वैसी बुरी न थी। लेकिन सूखा गोबर न मिला। तब खुखड़ी से एक खूँटे का कुछ हिस्सा काटकर आग जलाई।

रात बढ़ने लगी। सभी लोग सो गये। मांस की बू पाकर एकाएक छोटा सा बिलाव—उसे छोटा मोटा बाघ कहना चाहिए—कहीं से आकर हमारे घर में उपद्रव करने लगा। बरफ़ के राज्य में वह कौन जाने कहाँ रहता था। कम्बल में छिपे रहकर ही उसे कई बार भगाया। लेकिन डरने के बदले वह मांस की पोटली को नाखूनों से नोचने लगा। अब लेटे रहना मुशकिल हो गया। उठकर बत्ती जलाई। बहादुर और बेव.कूफ़ की भी नींद टूट गई। वे उठकर बैठ गये। बिलाव को देखने से मालूम हुआ कि वह बहुत ही भूखा है। पोटली में से मांस का टुकड़ा काटकर खाने के लिए उसके आगे फेक दिया। लेकिन उसकी भूख मामूली नहीं थी। उतने से वह .खुश न हुआ। उसे और भी ज़रूरत थी। सब के सामने पंजा मारकर उसने पोटली का एक हिस्सा फाड़ डाला। इससे मालूम हुआ कि बिलाव भिखारी नहीं, डकैत है। बेवक़ूफ़ ने उसे भगाने को डरवाया तो उसने भी दाँत निकालकर धमकाने के लिए पंजा उठाया। मानों कह रहा है कि बेवक़ूफ़, .ज्यादा गड़बड़ करेगा तो गाल में चाँटा लगा दूँगा। बेव.क़ूफ़ की नसों में पहाड़ी .खून है। बिलाव की बेअदबी से वह पागल सा हो गया। बाँस की मोटी लाठी उठाकर बिलाव को ठंडा कर देने की कोशिश करते ही बाघ का मौसेरा भाई गरजकर उस पर टूट पड़ा। साथी को इस संकट में देख बहादुर चुप न रह सका।

खुखड़ी लेकर बेव.क़ूफ़ की सहायता के लिए झपटते ही बिलाव ने बेव.क़ूफ़ को छोड़कर बहादुर के पैर में ज़ोर से काट लिया। बेव.क़ूफ़ ने इतने में ही बिलाव को लाठी मारी, लेकिन लाठी की चोट उसकी पूँछ के सिरे पर लगी। दर्द के मारे बिलाव ने एक बार चिल्लाकर



बिलाव उस पर टूट पड़ा

उसके पैर पर कूदकर बूट जूते पर दाँत जमा दिये। अब हमारी बारी थी। हमने फुर्ती से लाठी उठाई और उसकी पीठ पर ज़ोर से एक हाथ जमा दिया। शायद करारी चोट नहीं लग पाई। उसने घर में दो बार चक्कर लगाये। फिर दुम उठाकर वह बाहर भाग गया। वह दुबारा घर के भीतर नहीं आया सही लेकिन रात भर हम लोगों को लगातार कोसता रहकर घर के चारों ओर चक्कर लगाता रहा। सबेरे उसके दर्शन नहीं हुए।

अगले दिन का प्रातःकाल बहुत अच्छा जान पड़ा। चारों ओर उजाला फैलाता हुआ सूर्य निकला। बरफ़ के ऊपर धूप फैलने से विचित्र दृश्य दिखाई दिया। ऐसा जान पड़ा मानो हम लोग सोने, चाँदी और हीरों के देश में होकर जा रहे हैं। धूप की गरमी से बरफ़ गलकर पानी हो गई और शब्द करती हुई, चाँदी की धारा की तरह, चारों ओर बहने लगी। कुछ ही घंटों में रास्ते में कहीं नाम लेने को भी बर्फ़ न रह गई। अब वही बिना पेड़-पौदों का पहाड़ी देश और दूर-दूर की पहाड़ की चोटियों पर बर्फ़ रह गई। कुछ घंटों में ही हम लोग बहुत उँचाई पर पहुँच गये। सामने ही सरहद का दर्रा पहाड़ में दुपट्टे की तरह देख पड़ा। ऐसा जान पड़ा जैसे हम लोग दर्रे से छः-सात मील के ही फ़ासले पर हैं। एकाएक ठीक जगह का पता लग जाने से बड़ी ख़ुशी हुई। इसको पार करते ही तिब्बत में पहुँच जायँगे। अब एक मिनिट की भी देर नहीं करनी है। बहादुर और बेवक़ूफ़ को उत्साहित करके दोनों सवारियों को हम जल्दी-जल्दी हाँकने लगे। प्रकृति देवी को धोखा देना है। हाय री हमारी बुद्धि! वह दर्रा अभी बहुत दूर था। और प्रकृति की विराट् शक्ति का सामना करने के लिए हमारे पास था ही क्या?

फिर भी सभी लोग चक्कर काटते और चढ़ते-उतरते बढ़े जा रहे हैं और सामने का दर्रा भी मानों धीरे-धीरे दूर हटता जा रहा है। धीरे-धीरे एक, दो, तीन, चार टेढ़ाइयों (मोड़ों) को हमने तय किया। ऊपर चढ़े, नीचे उतरे, फिर चढ़े। लेकिन है कहाँ वह दर्रा? वह तो और भी दूर हट गया। एकाएक काले बादल घिर आये। सूर्यनारायण भी चटपट बत्ती बुताकर स्याही के सागर में ग़ायब हो गये। इसी समय बर्फ़ानी तूफ़ान ने ज़ोरों से आकर आफ़त मचा दी। जैसी मुसीबत थी उसको वही जान सकता है जिसने उसे कभी भोगा हो। हम पाँच प्राणी सुनसान रास्ते से, बड़े कष्ट सहकर, देश-भ्रमण करने निकले हैं। हम लोगों पर प्रकृति का इतना क्रोध किस लिए? उस दिन का सा तूफ़ान ज़िन्दगी में कभी नहीं देखा। ऐसा जान पड़ा कि तूफ़ान हम लोगों को आसमान में उड़ा ले जायगा। इस समय यदि बड़ी सी चट्टान, घर या छोटा सा खन्दक़ ही मिल जाता तो बड़े काम आता। उस तूफ़ान में, टेढ़ी कमर किये, हम ज़रा सा ऊपर चढ़ते और सामने बड़ी बारीकी से देखते कि शायद कहीं कुछ आसरा मिल जाय। एकाएक बहादुर चिल्ला उठा—"वह एक घर है।" सामने देखा, सचमुच रास्ते के मोड़ पर एक घर है। अब क्या था, शरीर में शक्ति लौट आई। जितनी जल्दी बना, हम लोग उस घर के भीतर जा पहुँचे और दोनों सवारियों को भी खींच-खाँचकर उसके भीतर कर लिया। लेकिन तूफ़ान न रुका। वह मतवाला होकर पहाड़ों में फेरा करने लगा।

सोचा था कि दूसरे दिन आसमान के साफ़ हो जाने पर चारों ओर उजाला हो जायगा। लेकिन वह आशा सफल न हुई। दिन भर में घंटे भर के लिए भी बरफ़ गिरना बन्द न हुआ। पहाड़, रास्ता,

गड्ढे और चट्टानें सभी बगले के पंखों जैसी बरफ़ में छिप गये। इधर-उधर सब जगह बरफ़ का ढेर जमा होने लगा। कहीं बरफ़ का गुम्बज़ सा बन गया, कहीं कछुए की सी शकल बन गई, कहीं पर भालू तो कहीं हाथी का सा आकार दिखाई देने लगा। जो थोड़ी देर तक इसी तरह और बरफ़ गिरती रही तो हमारा यह घर भी सफ़ेद हाथी बन जायगा। यह हालत देखकर ऐसा जान पड़ा मानो हम पाँच जीवधारी मेरु प्रदेश में आ गये हैं। किसी के छुटकारे की कोई आशा नहीं। साथ में जो खाने-पीने का सामान था वह भी चुकने पर है। मुशकिल से दो-तीन दिन गुज़र हो सकेगी। यह तो हुई हम लोगों की हालत। दोनों सवारियों ने सारी बिचाली सबेरे साफ़ कर दी है। अब तो तिब्बत का ही सहारा है। सुन रक्खा था कि दर्रे को पार करते ही वहाँ से कुछ ही मील के फ़ासले पर एक गाँव मिलेगा। लेकिन सामने के रास्ते को तय करना ही तो बहुत कठिन है। उस बरफ़ानी जेलखाने से छुटकारे की आशा धीरे-धीरे हमारे मन से दूर होने लगी।

यह तो मुशकिल थी ही, इसमें दूसरी कठिनाई यह देखी कि बहादुर और बेवक़ूफ़ कुछ कानाफूसी कर रहे हैं। उनके चेहरों और आँखों में शरारत की झलक थी। उस दिन शाम को तूफ़ान रुकने पर उन लोगों ने कहा—"अब हम लोग आगे न जायँगे। देश को लौट जायँगे।" हमें उनके मुँह से ऐसी ही बात सुनने की आशा थी। हमने उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"अच्छी बात है। लेकिन यहाँ से वापस जाने में जैसी कुछ मुसीबत होगी वैसी आगे बढ़ने में नहीं होने की, होगी तो कुछ कम ही। यह सामने ही तो दर्रा है।" हमने उँगली से उत्तर दिशा दिखला दी। असल में लगातार बर्फ़ गिरते रहने से

रास्ता कहाँ ढक गया था यह हम भी नहीं समझ पाते थे। फिर भी उन्होंने एक बार उस ओर आँखें गड़ाकर देखा लेकिन हमारी बात मानने को वे राज़ी नहीं हुए। कहा—"हुआ करे; हम लोग आगे न जायँगे।" हमने भी पीछे पैर न रखने का इरादा कर लिया। सामने के इस पहाड़ को लाँघेंगे और सो भी इन्हीं लोगों के साथ। समझ लिया कि इस रात को सोना बुद्धिमानी का काम नहीं है। खाने-पीने का सामान बर्बाद न हो जाय इसका भी ख़याल रखना है। इसलिए उस समय सबको खाना देकर पोटलियाँ अपने पास रख लीं। बहादुर और बेवक़ूफ़ हमारे इरादे को भाँपकर नाराज़ हो गये; लेकिन उन्होंने हमको चोट-चपेट पहुँचाने की हिम्मत नहीं की। कारण यह है कि वे यह जानते थे कि यह हममें से एक-एक को उठा-उठाकर फेक सकता है।

हम रात को अकेले बैठे जागते रहकर सोच रहे थे कि इस बर्फ़ की क़ैद से कैसे छुटकारा पावेंगे। शाम से ही बरफ़ का गिरना बन्द हो गया। आकाश में चन्द्रमा निकल आया। चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है। ऐसा मालूम हुआ मानो पहाड़ की चोटी से रुपहली धारा नीचे बहती हुई चारों ओर फैल गई है। उस चाँदी के देश के ऊपर होकर चाँदनी का पाल ताने हुए चन्द्रमा की नाव नीले समुद्र में खेई जा रही है। और नीचे हमारी दुर्दशा देखकर उसके चन्द्रमुख में हँसी नहीं रुकती। एकाएक देखा कि खच्चर और टट्टू कुछ चौकन्ने से हो गये हैं। मालूम होता था वे डर गये हैं। समझ में न आया कि ऐसे बन्द घर में इनके डरने का कारण क्या है। ज्योंही हमने उठकर उनकी पीठ पर हाथ फेरना शुरू किया त्योंही बाहर से एक बहुत ही असाधारण शब्द सुन पड़ा। हम भी कुछ डर से गये। सुनसान बरफ़

के राज्य में यह कैसी आवाज़ ? किसने आकर हमारे दरवाज़े पर धरना दिया ? पहाड़ का दैत्य तो नहीं है ? बचपन में, कहानियों में, सुना था कि हिमालय की चोटी पर गंधर्व और किन्नर रहते हैं। कहीं वे ही न हों। लेकिन वे गाया करते हैं! इसी बीच बहादुर और बेवक़ूफ़ भी उठकर बैठ गये। वे भी नहीं समझ पाये कि मामला क्या है। बेवक़ूफ़ भूतों से बहुत डरता है। वह हमारे बदन से सटकर बैठ गया और बुदबुदाकर मंत्र पढ़ने लगा। हमने एक बार सोचा कि ज़ोर से ललकारें लेकिन इस पर यदि दैत्य दुगुने ज़ोर से ललकारकर दरवाज़ा तोड़कर भीतर आ जाय तब क्या हो ? इसी से हम चुपचाप बैठे रहे लेकिन दोनों सवारियाँ बहुत छटपटाने लगीं। बाहर फिर वही आवाज़ हुई! इस बार बड़ी होशियारी से दरवाज़े के पास जाकर पल्ले और चैाखट की दरज से आँख लगाकर देखा, एक बड़ा भारी चीता (Snow leopard) बैठा हुआ जीभ लपलपा रहा है। जान पड़ता है, हमारी सवारियों की महक मिलने से उसके मुँह में पानी आ रहा था। ऐसी जगह उसे देखकर हमें बड़ा अचम्भा हुआ। यहाँ पर भला उसे खाने के क्या मिलता होगा और वह रहता ही कहाँ होगा ? डर का कारण मालूम हो जाने पर डर आधा ही रह जाता है। अब हमने ज़ोर से ललकारा। जान पड़ता है, ललकार ज़बर्दस्त हो गई थी। चीता चैांककर चट से कूद पड़ा और एक ओर भाग गया—माने। उसका भाव यह रहा हो कि "हमें टट्टू के मांस की ज़रूरत नहीं।" अब दोनों सवारियाँ भी कुछ शान्त हुईं। बहादुर और बेवक़ूफ़ बेखटके सो गये। अकेले हमीं बैठे-बैठे ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिलाने लगे।

रात बीतने पर हमने बहादुर और बेवक़ूफ़ के ठेलकर जगाया। लेकिन उन्होंने जाने से साफ़ इनकार कर दिया। हमने भी पक्का



बरफ़ को हटाकर चल रहे हैं

इरादा कर लिया था। साफ़ उजाला होते ही हमने दोनों सवारियों पर खाने-पीने के सामान की गठरियाँ-पोटलियाँ लादकर कहा—"हम अकेले ही जायँगे; तुम दोनों लौट जाओ।" अब हम आगे बढ़े। इससे वे दोनों बड़ी मुश्किल में पड़े। ख़ुराक का इन्तज़ाम किये बिना उस भयावने रास्ते पर कौन सा बटोही चलेगा! दोनों ही खड़े होकर न जाने क्या सोचने लगे। मौक़ा पाकर हमने फिर कहा—"यही हम लोगों की आख़िरी कोशिश है। सफलता न मिलेगी तो लौट चलेंगे। जब इतनी तकलीफ़ उठाई है तब थोड़ी सी तकलीफ़ और सही। बेवक़ूफ़! तीर्थ-यात्रा इतनी सहज नहीं होती।" बेवक़ूफ़ बौद्ध है। तिब्बत जाने की लालसा उसे बहुत दिन से थी। एक तो मुफ़्त में तीर्थ-यात्रा, उस पर दो सौ रुपये का इनाम! यह फ़ायदा क्या थोड़ा है? इसको सोचते ही वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। बहादुर भी साथ हो गया। यों हम तीनों साथ-साथ चलने लगे।

लेकिन यहाँ एक नई मुसीबत सामने आई—बर्फ़ जम जाने से रास्ते को पहचानना मुश्किल था। इसलिए बेखटके चलना कठिन हो गया। मैदान की नदी में कमर भर पानी को जिस तरह पार किया जाता है उसी तरह हम लोग बरफ़ को ठेल-ठेलकर चलने लगे लेकिन बीच-बीच में गड्ढे में पैर पड़ जाने और पत्थर से पैर टकराने पर हम लोग गिरते-पड़ते चलने लगे। इस तरह कहीं रास्ता तय किया जाता है? कोई पाँच मील चलने पर ही दिन डूबने को आया। थकावट और ठण्ड के मारे पैर बेकाम हो गये। आस-पास कहीं ठहरने लायक़ जगह नहीं दीख पड़ती थी। जल्द ही रात होगी, अँधेरा फैलेगा। ताज्जुब नहीं कि बरफ़ पड़ने लगे। बिना चले गुज़र भी नहीं। इधर

सूर्यनारायण को फ़ुरसत नहीं थी। वे पहाड़ की ओट में चले गये। चारों ओर गहरा अँधेरा फैल गया। ओफ़! उस रात की याद आने से अब तक रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस अँधेरे में तनिक सा सहारा पाने की आशा से हम लोग चारों तरफ़, अन्धे की तरह, टटोलते फिरने लगे। लेकिन कहाँ था आश्रय और कहाँ था रास्ता! फिर बरफ़ गिरने लगी। इस बार सचमुच बचाव के लिए कोई उपाय न सूझा। बहादुर फूट-फूटकर रोने लगा। बेवक़ूफ़ ज़ोर से बोला—"देवता! रक्षा करो।" पता नहीं, दोनों जानवर किसको बुलाने लगे। हमारा भी बुरा हाल हो गया। अँधेरे में बरफ़ानी तूफ़ान के बीच हम पागल की तरह इधर-उधर फिरने लगे। पता नहीं, कितनी ऊँचाई पर चढ़ आये थे और कितना समय बीत गया। जान पड़ता है, हमारी दुर्दशा देखने के लिए ही कृष्णपक्ष के चन्द्रमा ने पहाड़ की ओट से ज़रा सा मुँह निकाला। उस धुँधले उजाले में देखा कि हमारे दाहनी तरफ़ कोई बीस हाथ पर पहाड़ से एक बड़ी सी चट्टान बाहर निकली हुई है जिसके नीचे बरामदा सा बन गया है। बरफ़ को हटाकर वहाँ पहुँचने पर देखा कि पत्थर के नीचे बरफ़ नाम लेने को भी नहीं है। जगह की लंबाई-चौड़ाई ज़्यादा से ज़्यादा आठ हाथ होगी। उसी में हम पाँच प्राणियों को किसी तरह रहना है। उस मुसीबत के वक़्त ऐसा सहारा मिल जाने से हमको इतनी ख़ुशी हुई कि हमें ज़ोर-ज़ोर से यह गाने की इच्छा होने लगी—

हाँ रे हाँ, हाँ रे हाँ—अब नहीं बरफ़ में जमने के।
बग़लें बजें ख़ुशी से हाँ—डर रहा बरफ़ का है क्या अब!

लेकिन बेचारे बहादुर के रोने की याद आ जाने से मन की उमङ्ग को मन में ही दबा देना पड़ा। जो हो, ठण्ड और थकावट के मारे हम

लोगों को कुछ खाने की इच्छा न हुई। मांस का एक-एक टुकड़ा चबाकर हम तीनों आदमी कम्बल ओढ़कर एक दूसरे से सटकर लेट रहे। दोनों सवारियाँ रोम फुलाकर एक ओर खड़ी-खड़ी ऊँघने लगीं। फिर पता नहीं, किस वक़्त नींद आ गई।

सबेरे आँख खुलने पर देखा कि चारों ओर कुहरा फैला हुआ है। डर लगने लगा कि कहीं फिर बरफ़ न गिरने लगे। प्रकृति के मिज़ाज का क्या ठिकाना! उस कुहरे में आगे जाने की भी हिम्मत न हुई। कच्चे मांस से पेट भरकर हम लोग कुहरा फटने की आशा करने लगे। मालूम नहीं, बहादुर और बेवक़ूफ़ क्या सोच-विचार कर रहे थे। हमारे मन में तो तिब्बत के सिवा और किसी बात के लिए जगह ही नहीं थी। थोड़ी देर इसी तरह बीतने पर कुहरे का पर्त पतला हुआ और उसमें धूप दिखलाई पड़ी। धीरे-धीरे धूप के तेज़ होने पर कुहरा ग़ायब हो गया। सोचा था कि कुहरे के हटते ही कूच कर देंगे। लेकिन चारों ओर बरफ़ ही बरफ़ थी। उसके नीचे रास्ते का पता कहाँ लगता। सामने एक दूसरे से सटे हुए तीन-चार पहाड़ थे। हम लोगों के स्थान से पहाड़ों की तलहटी तक एक दही का समुद्र सा था। इस समुद्र में न तो नाव चलती है और न जहाज़ ही। ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो इसे तैरकर पार कर ले। और इतना हलका प्राणी ही वहाँ कौन है जो इसके ऊपर चलने से डूब न जाय? ये बातें सोचते-सोचते उस बरामदे के नीचे से दस-बारह हाथ बाहर आकर देखा कि बरफ़ के ऊपर पञ्जों के गहरे निशान हैं। वे चिह्न टेढ़े-मेढ़े रास्ते से दही के समुद्र के दक्खिन ओर घूमकर पहाड़ों की ओर को गये हैं। उन चिह्नों को देखने से निश्चय हो गया कि वे बाघ जैसे किसी जानवर के पञ्जों के हैं। लेकिन

जानवर क्या कोई मन्त्र जानता है? इस दही के समुद्र के ऊपर से उसने भीतर छिपे रास्ते को कैसे पहचान लिया? देह के बोझ से डूब तो नहीं गया! बेवक़ूफ़ ने गम्भीर होकर कहा—"वह बुद्धदेव का जासूस होगा। उन्होंने उसे हम लोगों को रास्ता दिखाने के लिए भेजा था।" हमने उसकी बात मान ली और तुरन्त सबको साथ लेकर हम उन्हीं निशानों की सीध में चलने लगे।

कोई छः घण्टे चलने के बाद दही के समुद्र को पार करके दर्रे में, पहाड़ों के बीच में, पहुँच गये। उसकी चोटी पर बरफ़ का मुकुट था। यही सिकिम और तिब्बत के बीच का दर्रा—छेरपो—है जिसके लिए हमने इतनी मुसीबतें झेली हैं। लेकिन यह असली दर्रा नहीं है। असली रास्ता यहाँ से कुछ फ़ासले पर है। छेरपो दर्रा बड़ा मज़ेदार है। दोनों ओर आकाश को छूनेवाले पहाड़ हैं। वे दोनों एक जगह इतने सँकरे हो गये हैं कि बीच में दो हाथ से भी कम चौड़ी दरज सी रह गई है–काशी की गली समझिए। यह गली, नल की तरह, सीधी ऊपर को चली गई है। उसके भीतर बरफ़ भरी हुई है। हम लोग जितने ही ऊपर चढ़ने लगे, बरफ़ का जमाव उतना ही अधिक होने लगा। अन्त में ऊपर, मुख के पास, इतना अधिक हो गया कि उसमें से बाहर निकलना तक मुशकिल हो गया। डर लगने लगा कि यदि नल के दोनों छोरों में एका-एक बरफ़ भर जायगी तो क्या होगा। खुखड़ी से किसी तरह बरफ़ को काटकर छेद को चौड़ा कर लिया। इसके बाद उसी छेद की राह ऊपर की ओर बाहर निकलते ही देखा, सामने एक नया देश है।

जितनी दूर तक नज़र पहुँचती थी वहाँ तक न कहीं पेड़-पौदे थे और न घास हो नाम लेने को थी। वहाँ की धूसर रङ्ग की मिट्टी

नीरस और कड़ी थी। उस पर जहाँ-तहाँ थोड़ी-बहुत बरफ़ जमी हुई थी। कई मील पर दक्षिण की ओर मुड़कर पूर्व-पश्चिम एक लम्बी-चौड़ी उपत्यका सी थी। उपत्यका की उत्तर-दक्षिण सरहद पर धुएँ से ढके हुए पहाड़ों का सिलसिला था—मानों एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए खड़े हों। इन लक्षणों से मालूम हो गया कि हम तिब्बत में आ गये। तिब्बत में सदा ठण्ड रहती है। फिर भी वहाँ न तो ज़्यादह बरफ़ गिरती है और न पानी बरसता है। बरफ़ और पानी से भरे हुए बादलों में हिमालय की चोटियों को लाँघकर उधर जाने की ताब कहाँ? सभी मेघ गिरिराज के कन्धों पर अटककर चद्दरे की तरह उड़ते रहते हैं। जो हो, तिब्बत की सरहद पर पहुँच जाने से सब की जान में जान आई। बड़ी उमङ्ग के साथ चलते-चलते शाम के वक़्त तिस्ता नदी की जन्मभूमि के पास हम लोग पहुँचे। वहाँ पर नदी की हालत देखकर हम लोग दङ्ग हो गये। बङ्गाल में तेज़ी से बहनेवाली तिस्ता यहाँ पर बरफ़ का बड़ा सा चहबच्चा सी है। कहाँ है उसका वह गर्जन और कहाँ है उसकी अथाह गहराई! वह रात हम लोगों ने अपनी पहचानी हुई नदी के बिना पहचान के किनारे पर काटी। ग़ज़ब की ठण्ड थी। दूसरे दिन फिर रवाना हुए।

इस रास्ते में बरफ़ न थी; लेकिन अब पहाड़ पर ऐसी खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ी कि क़दम क़दम पर दम लेने के लिए बैठना पड़ता था। पहाड़ था सत्रह हज़ार फ़ुट ऊँचा। असली दर्रा यही है। इसके पार कर लेने पर ही ख़ास तिब्बत में पहुँचेंगे। अगर चढ़ाई कुछ कम खड़ी होती तो भी ग़नीमत थी। बहुत कोशिश करने पर भी उस दिन आधी चढ़ाई ही तय कर पाये। पहाड़ पर एक बड़े से गड्ढे में रात बिताई।

दूसरे दिन बाक़ी चढ़ाई चढ़कर चोटी पर पहुँचे। पीछे की ओर मुड़कर देखा, गिरिराज हिमालय बड़े गर्व से सिर ऊँचा किये खड़ा है। उसके सामने भारत, पीछे तिब्बत, और दोनों ओर अनगिनत पहाड़ हैं। भारतवर्ष से यहाँ आने में उसने हमें क्या कम बाधाएँ दी हैं। हम साधारण आदमी हैं सही, लेकिन वह हमें पकड़कर नहीं रख सका। पृथ्वी में ऐसा कौन सा काम है जो प्रयत्न करने से सफल नहीं हो सकता ? हम लोगों ने गिरिराज को परास्त कर दिया। इसी से पग-पग पर संकट बढ़ते गये। तिब्बत के सुनसान रास्ते में जासूसों की नज़र बचाकर चलना बहुत ही कठिन है। कौन जानता है कि जासूसों के जाल में पड़कर अथवा कड़ी सर्दी और भूख-प्यास से हमें प्राणों से हाथ न धोने पड़ेंगे ? लेकिन अब लौट भी तो नहीं सकते। लौटने का रास्ता अब कई महीने के लिए बरफ़ के नीचे छिप गया है।

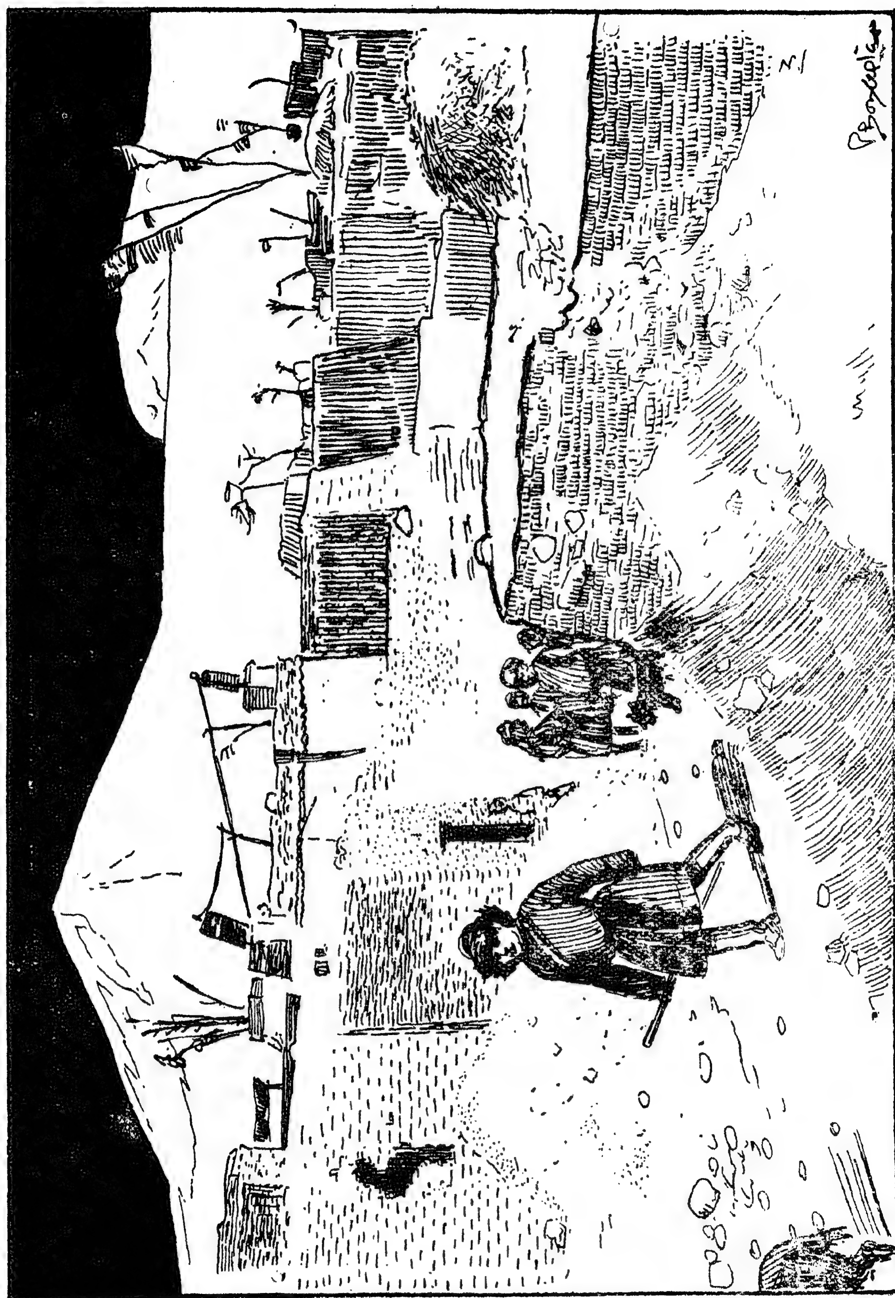
यहाँ से हमारा लक्ष्य लासा हो गया।

तिब्बत में

सामने ढालू रास्ता है। हलके पीले रंग की मिट्टी के ऊपर होकर रास्ता नीच को चला गया है। ऐसे रास्ते पर चलने में तनिक भी तकलीफ़ नहीं होती। लेकिन देश को देखने से बड़ा अचंभा होता है। ऐसे देश में भी आदमी रहते हैं! सूखी बलुई मिट्टी है। उस पर छोटी-छोटी तरह-तरह की गोल-गोल कंकड़ियाँ हैं जो दूर से चिड़ियों के पर की तरह जान पड़ती हैं। इस मिट्टी में न तो जमे हैं पेड़-पौधे और न झाड़-झंखाड़। मिट्टी की ही तरह ख़ुश्क हवा बह रही है। ऐसी हवा के ज़रा सा छू जाते ही पेड़-पौधे मर जाते हैं। चारों ओर देखते चले जा रहे हैं। जहाँ तक निगाह जाती है, न तो कोई आदमी दीख पड़ता है और न किसी गाँव का ही पता चलता है। यह तो रेगिस्तान सा है। इधर कुछ दिनों से बेवक़ूफ़ और बहादुर के सिवा और किसी आदमी का चेहरा देखने को नहीं मिला। इससे जी घबरा रहा था। कैसा भी एक आदमी तो देखने को मिल जाता! देखने को मिला सही लेकिन आदमी नहीं, कई मील चलने के बाद हिरनों का एक झुंड। मिट्टी के साथ उन हिरनों की रङ्गत इतनी अधिक मिलती है कि पास आये बिना पहचाने नहीं जा सकते कि ये हिरन हैं। और उनकी पूँछ का क्या कहना—दूध की तरह सफ़ेद बालों का एक गुच्छा समझिए। चलने पर वह हिलती-डुलती है। बिना घास के उस मैदान में हिरन मुँह से काट-काटकर न जाने क्या खा रहे थे। देखकर हमें बड़ा

अचम्भा हुआ। पेड़-पौधे न होने से तिब्बत के हिरन क्या कंकड़ियाँ और बालू खाते हैं? हम लोगों को देखकर हिरन ज़्यादा झिझके नहीं। वे कई हाथ की दूरी पर बेधड़क चरते फिरते थे। हिरनों में इतनी हिम्मत! तिब्बत की सरकार की ओर से शिकार की मनाही होने के कारण हिरन इतने निडर हो गये हैं। नहीं तो आदमी को देखकर जङ्गली हिरन क्या खड़ा रह सकता है? अब जाँच करके देखा, कंकड़ों की ओट में छोटी-छोटी घास थी जो एक-दो पत्तियों के साथ ज़मीन से बाहर निकली हुई थी। हिरनों की यही ख़ूराक है। ठण्ड के मौसम में जब यह भी नहीं होती तब हिरनों के झुण्ड पहाड़ पर जाकर काई खाते हैं। जो हो, हमारी दोनों सवारियों ने हिरनों की देखादेखी उस घास को खाना शुरू कर दिया। ये दोनों जानवर कोई दो दिन से भूखे थे। हम लोग भी उन्हें छोड़कर थोड़ी देर तक सुस्ताने लगे। लेकिन अधिक देर करना उचित न समझा। हमारी ख़ूराक भी ख़तम होने को थी। दिन डूबने से पहले किसी गाँव में पहुँचना ज़रूरी था। इसी से अपने जानवरों को पकड़ लाकर हम लोग आगे बढ़े।

असल बात अभी तक नहीं कही। तिब्बत की सरहद में पहुँचते ही हम और बहादुर दोनों ही कुली की तरह पीठ पर पोटलियाँ लादे चल रहे थे और बेवक़ूफ़ हम लोगों का मालिक बनकर टट्टू पर चढ़ा चला जा रहा था। ख़च्चर भी पीछे-पीछे आ रहा था; उस पर सामान लदा हुआ था। बहादुर की कलाई में ख़च्चर की डोरी बँधी थी। इस तरह सुनसान मैदान में कोई पाँच मील चले, इतने पर भी न तो कोई बस्ती मिली और न आदमी ही। हाँ, बीच-बीच में हिरनों के झुण्ड



ज़रूर मिल जाते थे। एक जगह हिरनों के एक बहुत बड़े झुण्ड में से होकर हम लोग निकले। न जाने क्यों बेवक़ूफ़ को एकाएक गाने की इच्छा हुई। इससे पहले हमने उसे गाते नहीं देखा था। गला साफ़ करके उसके गाते ही हम चौंक पड़े। हिरनों ने भी शायद ऐसा गाना न सुना होगा। इसी से वे डरकर मैदान में इधर-उधर भागने लगे। खच्चर भी न जाने क्या समझकर उसके साथ-साथ चिल्ला पड़ा। इसमें उन सबका कोई दोष नहीं था। उस खुले मैदान में हमें भी गाने की इच्छा होने लगी।

भाग्य से उस समय संगीत के लोभ को रोक लिया था; क्योंकि रास्ता उस जगह से एकदम नीचे की ओर मुड़कर एक सूखी हुई नदी के सँकरे पाट से होता हुआ उस पार एक गाँव में गया था। गाँव इतना नीचे था कि बिलकुल पास पहुँचे बिना वह इस पार से दिखाई ही नहीं पड़ता था। जब उस पर नज़र पड़ी तब हम नदी के इसी पार गाँव से कोई दो-तीन सौ हाथ की दूरी पर थे। गाँव छोटा सा था। उसमें २०-२५ छोटे-छोटे मकान थे। हर एक घर की छत पर एक-एक झण्डा फहरा रहा था। तिब्बतियों का विश्वास है कि यह झण्डा फहराता रहकर पापों को दूर कर देता है। हम लोग यह नहीं समझते थे कि गाँव के पास यों एकाएक जा पहुँचेंगे। हम लोग गाँव के भीतर जायँ या नहीं, इसका निश्चय करने के पहले ही गाँव के दो आदमियों ने हाथ के इशारे से बुलाया। अपने देश में होते तो यों रिश्तेदार की तरह बुलाये जाने से चित्त प्रसन्न हो जाता किन्तु यहाँ परदेश में इस व्यवहार से हम डर गये। भागने का भी तो रास्ता कहीं नहीं था; नहीं तो भागने की कोशिश की जाती।

लाचार होकर बेवक़ूफ़ से आगे जाने को कहा और हम बलिदान के बकरे की तरह सबके पीछे-पीछे चलने लगे। कहीं ऐसा न हो कि परदेशी समझे जाकर पकड़ लिये जायँ। बड़ी मुसीबतें झेलकर तो इतनी दूर तक आये हैं। अब शायद जान न बचे। मरने के बाद भूत बनकर तिब्बत में घूमने-फिरने का मौक़ा मिलने की भी तो उम्मीद नहीं; क्योंकि तिब्बती लोग भूतों को भगाने में बड़े उस्ताद हैं। लेकिन हमारा इतना डरना फ़िज़ूल था। तिब्बतियों ने कुली समझकर हमारी ओर एक बार देखा तक नहीं। गाँव के छोटे-बड़े सभी लोग बेवक़ूफ़ और बहादुर को घेरकर उनसे बातचीत करने लगे। वे कहने लगे कि तुम लोग दर्रे को पार करके कैसे आये! दो दिन हुए कि उस गाँव से चार आदमी इसी दर्रे में होकर सिकिम राज्य के लाचेंग् गाँव को जाने के लिए गये थे। उनमें से दो तो बर्फ़ानी तूफ़ान में मर गये और दो को लौटने पर न्युमोनिया हो गया। उनके बचने की उम्मीद कम है। दलाई लामा की कृपा से बच जायँ तो बच जायँ। तिब्बत में वैद्य या डाक्टर नहीं होते। दलाई लामा ही सब कुछ करते हैं। बहुत से असाध्य रोगों में लामा महाराज अपने शरीर का मैल रोगी के लिए औषध के रूप में खाने को देते हैं। तिब्बतियों का विश्वास है कि दलाई लामा मुर्दे को भी ज़िन्दा कर सकते हैं। हम ज़िन्दा आदमी बर्फ़ानी तूफ़ान में पड़कर मरे नहीं इसके लिए हमने मन ही मन दलाई लामा को धन्यवाद दिया। और यह मनौती मानी कि हमें कोई भारी बीमारी न हो; नहीं तो शायद हमें भी किसी लामा महाराज के शरीर का मैल खाना पड़े। जो हो, हम ठहरे नहीं; खच्चर को हाँकते हुए गाँव के रास्ते से आगे बढ़े। अब गाँव को अच्छी तरह देखने का मौक़ा

मिला। मकान दोमंज़िले थे लेकिन उनमें ऊपर चढ़ने के लिए ज़ीने के बदले सीढ़ी लगी हुई थी। रात को सीढ़ी ऊपर उठा ली जाती है। घरवाले ऊपर रहते हैं। नीचे गाय-बैल, भेड़-बकरी, गधे, नौकर-चाकर, घास-भूसा, पुआल वग़ैरह रक्खा जाता है। बिना जान-पहचान का कोई अतिथि आ जाता है तो उसे भी नीचे की मंज़िल में जगह दी जाती है। तिब्बतियों के पक्के मकान से यह न समझ लेना चाहिए कि वे सभी बड़े आदमी होते हैं। बात यह है कि तिब्बत में कच्चा मकान बनाने का सामान है ही नहीं। वहाँ बाँस, लकड़ी, फूस वग़ैरह कुछ नहीं होता। तिब्बती लोग कच्ची मिट्टी की ईंटें सी बना लेते हैं। उनको पकाने के लिए कोयला भी नहीं मिलता। उन गीली ईंटों को धूप में सुखा लेते हैं। इस गाँव में पहले चीनवालों का एक क़िला था; लेकिन अब उसमें चीनी लोग नहीं रहते। इससे वह टूट-फूटकर गिर गया है। मालिक न रहने पर घर की यही हालत होती है। गाँव छोड़कर हम खच्चर के साथ बढ़े जा रहे हैं। लेकिन टट्टू, बहादुर और बेवक़ूफ़ का पता नहीं; इसलिए रास्ते में एक जगह बैठकर हम उनकी बाट जोहने लगे। थोड़ी देर में देखा कि वे तीनों चले आ रहे हैं। बहादुर की पीठ पर एक और बोझा बढ़ गया। यह जौ के सूखे डण्ठलों का बोझ था। यहाँ के चौपायों की यही ख़ुराक है। इसके सिवा हम लोगों के लिए चाँगपा (जौ का आटा) और सूखा मांस भी ख़रीदा गया था। गाँव से कोई २ मील की दूरी पर एक जगह खाने-पीने का प्रबन्ध किया गया। बहादुर सचमुच बहादुर है। मैदान में से वह सुरागाय और हिरन का सूखा हुआ बहुत सा "लाद" उठा लाया। उसी से उसने आग जलाई। वह एक देगची पानी भी ले आया।

वह चाय बनाकर और मांस भूनकर कुछ चपातियाँ भी बनाना चाहता था लेकिन उसकी मुराद पूरी न हुई। आग बुझ गई। ऐसा ख़ुश्क मुल्क है कि आग भी देर तक नहीं ठहर सकती। चाय के साथ भुना हुआ मांस खाकर हम लोग आगे बढ़े। सामने ही कप्पा-जंग मठ है। शाम के पहले वहाँ पहुँचना है।

इस रास्ते में हिमालय की तरह बर्फ़ का डर नहीं है। हाँ, ज़मीन पर कहीं-कहीं एक-आध बर्फ़ का टुकड़ा पड़ा था। लेकिन आँधी का डर तो है ही। बिना किसी आश्रय के, लम्बे-चौड़े सुनसान मैदान में एक बार आँधी उठती है तो बटोही को प्राण बचाना कठिन हो जाता है। उस आँधी की रफ़्तार घंटे में सौ मील की होती है और हवा इतनी ठंडी होती है कि सात-आठ मोटे-मोटे कुर्त्ते पहनने से भी ठण्ड नहीं जाती। जान पड़ता है जैसे कोई चाबुक मार रहा हो। इस आँधी का वेग दोपहर को बढ़ता है और दोपहर से शाम तक एक सा रहता है। इसके बाद रुक जाती है। लेकिन कभी-कभी रात को भी चलती रहती है। यहाँ से लासा तक हमें इस आँधी का सामना करना पड़ा था। उस दिन भी दोपहर को आँधी आई। इससे हम लोग उसी मैदान में एक दूसरे से सटकर बैठ गये। चौथे पहर वेग कुछ कम होने पर हम लोग फिर चटपट रवाना हो गये।

शाम का अँधेरा घना होने पर हम लोग कप्पा-जङ्ग पहुँचे। उस शहर की गन्दगी का क्या कहना है। रास्ते में जगह-जगह कूड़ा-करकट फैला हुआ था। बदबू आ रही थी। उसके मुक़ाबले काशी की गलियों की गन्दगी और कलकत्ते के बड़े बाज़ार की सड़ायँध कुछ भी नहीं है। रास्ते में कुत्ते उस कूड़े-कचरे के लिए छीना-झपटी करके

लड़ रहे थे। और मनुष्यों की शोभा का ही क्या कहना! एक तो गन्दी पोशाक और बदन से ऐसी बदबू निकलती थी कि पास खड़ा होना कठिन था। कप्पा-जङ्ग में उस समय कोई मेला लगा हुआ था। भूत का नाच हो रहा था। मेला देखने को जाने की इच्छा हुई। लेकिन शहर की हालत देखने से अधिक रात तक ठहरने की हिम्मत नहीं हुई। अब सारे शहर में इसलिए चक्कर लगाया कि कहीं ठहरने को जगह मिल जाय। लेकिन जगह नहीं मिली। मेले के लिए आये हुए दर्शक सरायों में टिके हुए थे। अन्त में बस्ती के बिलकुल छोर पर, बल्कि बस्ती से बाहर कहना चाहिए, एक सराय में जगह तो मिली लेकिन घर के भीतर सबके लिए गुंजाइश न थी। बेवक़ूफ़ था हम लोगों का मालिक। वह अन्यान्य तिब्बती भले आदमियों के साथ घर के भीतर आराम से रहा। बहादुर को और हमें जगह मिली खुली छत के ऊपर उन भले आदमियों के नौकर-चाकरों के पास। तिब्बत में रात को कड़ी ठण्ड पड़ती है। वहाँ पर गये बिना वहाँ की ठण्ड की अधिकता का अनुभव नहीं हो सकता। लेकिन करते क्या? जब नौकर का स्वाँग रख लिया है तब कष्ट सहना ही पड़ेगा। भरपेट खा-पीकर छत पर पहुँचे। एक तो रात, उस पर वह तूफ़ान अभी तक पूरी तरह बन्द नहीं हुआ था। फिर भी औरों की देखादेखी हम भी कपड़े ओढ़कर लेट रहे। लेकिन नींद न आई। और लोग आराम से खर्राटे लेने लगे। मैं बैठकर ठण्ड के मारे काँपने लगा। तब समझ में आया कि तिब्बती लोग नहाते-धोते क्यों नहीं हैं। प्रतिदिन इनकी देह पर जो मैल जमता जाता है उसकी एक मलाई की सी मोटी तह जम जाती है। उस तह के भीतर ठण्डी हवा नहीं पहुँचती। हमारे

बदन पर भी इधर कई दिनों से काफ़ी मैल जम गया था। लेकिन पर्त पतली थी। डाढ़ी बढ़कर बालिश्त भर की हो गई थी। सिर, डाढ़ी और बदन पर जूँ रेंगते थे। ये बेतरह काटते थे। लेकिन अब नहाने को हमारा भी जी न चाहता था। पानी मिल जाता तो टकटकी लगाकर देखा करते।

जो हो, उस अँधेरे में बैठे-बैठे एक बार सोते हुए शहर की ओर और पहाड़ की चोटी पर कप्पाजंग क़िले की ओर देखते तथा फिर एक बार ताराओं से भरे आकाश की ओर देखकर सोचते कि भगवान् सबेरा कब होगा। लेकिन ठण्ड की रात जल्दी नहीं कटती। कप्पाजंग क़िले की चोटी जिस समय थोड़ी-थोड़ी साफ़ दीखने लगी उस समय मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। तिब्बती बटोही रात के पिछले पहर ही रवाना हो जाते हैं। अन्दाज़ से उस समय तीन बजे होंगे। कुछ तिब्बती लोग सराय से उसी वक्त रवाना हो गये। दिन के उजेले में लोग हमें पहचान न लें कि यह परदेशी है, इस डर के मारे हम भी उस समय रवाना होने की तैयारी करने लगे। यद्यपि रास्ता पहचाना हुआ नहीं था, फिर भी हमें यह तो मालूम ही था कि वहाँ से लासा के लिए वही एक ख़ास रास्ता है। सरायवाले का भाड़ा आदि चुकाकर हम पाँचों—बहादुर, बेवक़ूफ़, हम, टट्टू और ख़च्चर—वहाँ से निकले। सिक्किम में बने थे हम ऊन के सौदागर और तिब्बत में हैं तीर्थयात्री। हिन्दुओं के लिए काशी और मुसलमानों के लिए मक्का जितना पवित्र स्थान है उतना ही पवित्र तिब्बतियों और सिक्किमवालों के लिए लासा है।

कप्पाजंग से आगे बढ़ने पर रास्ते में एक नदी मिली। उस समय नदी का पानी जमकर बरफ़ हो गया था। उसके ऊपर चलकर

ही हमने नदी को पार किया। सोचा था कि जब रास्ते का पता जाना हुआ है तब चलने में तनिक भी दिक्कत न होगी। किन्तु चलने पर अपनी भूल मालूम हुई। रास्ता आदि बनाने को तिब्बत-वालों को तनिक भी परवा नहीं है। हमारे देश के पहाड़ों का रङ्गीन रास्ता मन को प्रसन्न कर देता है; जी चाहता है कि लगातार चलते ही रहें। लेकिन यहाँ तो ज़रा सा बैठ जाने को मन करता था। ऊबड़-खाबड़ में होकर, गड्ढों को लाँघते हुए भला कितनी दूर चला जा सकता है? अजीब देश में सब कुछ अजीब ही होता है। देश-विदेश की सैर करने में जैसा सुख मिलता है वैसा दुःख भी सहना पड़ता है। इस पर ध्यान रखने से राह चलने में तकलीफ़ कम होती है।

तड़के के हलके अँधेरे में चलते चलते एक जगह दिन निकला। इस उजेले में पीछे हिमालय की अपूर्व शोभा देखी। सचमुच हिमालय पहाड़ों का राजा है। बिलकुल नीले आकाश के नीचे छोटे-बड़े अनगिनत पहाड़ों की बड़ी भारी सभा थी। सभासदों में से कोई कुछ बोलता-चालता नहीं था। उस चुपचाप बैठी हुई सभा के बीच में बहुत ही ऊँचा गिरिराज बड़ी ऐंठ के साथ बैठा हुआ समुद्र और पृथिवी पर हुकूमत किया करता है। उसके माथे पर धूप में चमकता है बरफ़ का मुकुट और कन्धों पर सतरङ्गे मेघों का दुपट्टा सबेरे की हवा में फहराता है। बड़ी देर तक हमने खड़े खड़े उस दृश्य को देखा। इसके बाद उसको नमस्कार करके फिर आगे बढ़े। तिब्बत के बीच से हिमालय जितना साफ़ दिखाई देता है उतना और कहीं से नहीं। वहाँ की हवा में धूल-धक्कड़, धुआँ या पानी की भाप नहीं

रहती। आकाश में बादल फैलकर भी गिरिराज को नज़र से ओझल नहीं करते।

रास्ते में कई एक तिब्बती मदारी (खानाबदोश) मिल गये। सुरा गौओं और भेड़ों को ये लोग उस रेगिस्तान जैसे मैदान में चराया करते हैं। हमने एक व्यक्ति से सुरा गौ का थोड़ा सा टटका दूध मोल लेकर पिया। यह देखकर वह हमारी ओर ताकने लगा। तिब्बतवालों को दूध पीने की आदत नहीं है। हमारे दूध पीने से उसे शक हुआ होगा कि यह कोई परदेशी है। लेकिन उसके कुछ पूछ-ताछ करने से पहले ही बेवक़ूफ़ ने कह दिया—'कुली बीमार हो गया है।' बेवक़ूफ़ की बात पर विश्वास करके वह फिर कुछ पूछे बिना ही अपने रास्ते चला गया। इस बार भी हम साफ़ बचे।

उस दिन रास्ते में दो गाँव मिले, लेकिन हम कहीं रुके नहीं। चलते-चलते ऐसी जगह शाम हो गई जहाँ टिकने के लिए कुछ नहीं था। भूख-प्यास के मारे परेशानी थी। मारे थकावट के आगे पैर नहीं उठता था। वहाँ हलके अँधेरे में खड़े-खड़े हम इधर-उधर देखने लगे कि शायद कहीं नदी का पता लग जाय। लेकिन नदी थी कहाँ? परन्तु उस सूनसान मैदान में बत्तख की सी बोली सुन पड़ी। किन्तु विश्वास नहीं हुआ। फिर कान खड़े करके सुनने की कोशिश की तो वही शब्द सुन पड़ा। जिधर से शब्द सुन पड़ा था उसी की सीध में कुछ दूर चलने पर एक नदी के किनारे जा पहुँचे। एक तो रात को पार जाने में कठिनाई होने का डर था, दूसरे यदि उस पार पहुँच भी जाते तो आश्रय मिलने का भरोसा नहीं था, इसलिए वहीं रात बिताने का इरादा कर लिया। बहादुर नदी में से थोड़ी सी बरफ़ काट लाया। उस बरफ़ को

खाकर ही प्यास मिटाई और सूखा हुआ मांस खाकर पेट भरा। लेकिन न मालूम क्यों, रात के पहले पहर नींद नहीं आई। हमें मिठाई बहुत अच्छी लगती है। कई दिनों से मिठाई खाना तो रहा दूर, ज़रा सी चीनी भी नहीं खाई थी। इसलिए मिठाई अथवा चीनी के लिए मन बहुत तरस रहा था। कहीं से ज़रा सी मिठाई मोल मिलने का भी तो उपाय नहीं था। तिब्बती लोग मिठाई खाते ही नहीं, फिर उसका रोज़गार क्यों करें। पिछले पहर सो जाने पर सपने में देखा कि माँ ने हमें खाने को लड्डू और खीर दी है। हम बड़ी साध से खा रहे हैं। लेकिन लड्डू अच्छे नहीं बने हैं। इतने कड़े हो गये हैं कि हाथ से दबाने पर इधर-उधर लुढ़क जाते हैं। इससे माँ पर कुछ नाराज़ होकर ज्योंही हमने 'नहीं खायँगे' कहकर लड्डुओं को हटाया त्योंही आँख खुल गई। देखा कि हम लड्डुओं के बदले बेवक़ूफ़ के जूते समेत पैर को खींच-खाँच रहे हैं। इधर दिन भी चढ़ रहा था। अब लाचार होकर आगे बढ़ने की तैयारी करनी पड़ी। बहादुर की मेहरबानी से एक प्याला चाय और भुना मांस खाने को मिल गया। ऐसी जगह यही कौन लिये बैठा था?

रास्ते का हाल नये सिरे से क्या लिखें? उसका तो वही सिल-सिला चला आ रहा था। गाँव भी एक ही ढंग के थे। रास्ते में और गाँवों में जिन लोगों को देखा उनमें भी कुछ नयापन नहीं था। लेकिन मैदान में एक जगह कई एक छोटे-छोटे ख़ूब काले रङ्ग के तम्बू तने हुए दिखाई दिये। दूर से वे बहुत अच्छे जान पड़ते थे। बेवक़ूफ़ ने बतलाया कि तम्बू सुरा गौ के चमड़े से बनाये जाते हैं। तिब्बत में तीन तरह के आदमी रहते हैं—भले आदमी, किसान और मदारी।



भीम के दल का आदमी है या दुर्योधन के दल का ?

मदारियों का कहीं घर-द्वार नहीं होता। उनके जत्थे देश में इधर-उधर बिचरते रहते हैं। साथ में सुरा गौओं, भेड़ों, टट्टुओं और गदहों के झुण्ड रहते हैं। सुरागौओं और भेड़ों का मांस तथा मक्खन तो उनकी .खुराक है और उनके चमड़े से वे कपड़े का काम लेते हैं। इन भेड़ों की मुलायम पशम कश्मीर और पेरिस को भेजी जाती है। राजा और रईस जिस काश्मीरी शाल को जाड़ों में बड़ी शान से ओढ़ते हैं वह इन्हीं भेड़ों की पशम से बनती है। ये मदारी लोग तम्बुओं में ही रहते हैं। इन लोगों की भी कई क़िस्में हैं। इन लोगों में .खूनी, डकैत और चोर भी होते हैं। इन लोगों को मुसाफ़िरों की हत्या करने या गाँवों को लूटने में ज़रा भी हिचक नहीं होती। तिब्बत की सरकार इन लोगों से पेश नहीं पाती। यह हाल मालूम होने पर हमें भी डर लगा। ये लोग कहीं उसी पेशेवाले न हों। लेकिन ये तम्बुओं के बाहर खड़े-खड़े हम लोगों की ओर देखते ही रहे, किसी ने कुछ पूछताछ नहीं की। हम लोग तनिक जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाकर वहाँ से आगे बढ़ गये।

लेकिन भागकर जायँ कहाँ? एक खासा ऊँचा पूरा आदमी फुर्ती से हम लोगों की ओर सामने से आ रहा था। उसके कन्धे पर बड़ा सा धनुष था और तरकस में थे पैने तीर। महाभारत के युग का आदमी जान पड़ा। अब तक पहाड़ में कहीं छिपा रहा होगा। क्या जाने, आज किसलिए बाहर निकल आया है। वह हम लोगों के आगे आकर खड़ा हो गया। फिर उसने सबकी ओर कड़ी नज़र से देखा। उस समय हम भीम और दुर्योधन का नाम जप रहे थे। अगर वह उन दोनों दलों में से किसी पक्ष का होगा तो हमें छोड़ देगा। कहीं इतना लम्बा-चौड़ा आदमी होता है! मालूम नहीं हुआ कि वह भीम

के दल का था या दुर्योधन के पक्ष का। कुशल इतनी ही हुई कि हम लोगों से बिना कुछ कहे सुने वह अपनी राह चलता बना। बेवक़ूफ़ ने बतलाया कि यह मदारी था। तिब्बत के मदारी प्रायः ऐसे ही ऊँचे पूरे होते हैं। अब तक हम समझते थे कि हमारे पंजाबी ही पृथिवी में सबसे बड़े जवान होते हैं लेकिन अब देखा कि इनके मुक़ाबिले वे 'पर्वत के आगे राई' हैं। अभी यह दूर नहीं गया होगा कि एक और आदमी मिला। लेकिन इसके चेहरे पर भलमनसाहत थी। यह तकली पर पशम कातता चला गया। इसके साथ दो सुरागौएँ थीं। रङ्ग-ढङ्ग से यह किसान जान पड़ा। किसान तो होगा ही, लेकिन किस चीज़ की खेती करता होगा? यह तो बिना छाया और बिना पेड़-पौदों का रेगिस्तान है। बेवक़ूफ़ ने बतलाया कि गरमी के मौसिम में जौ की खेती होती है और पशम के तागे से किसान के घर की औरतें कपड़े बिनती हैं। बात कुछ अच्छी नहीं जान पड़ी। अजब आदमी हैं। अपने लिए आप ही कपड़े बिनते हैं!

हमारे चलने का अन्त नहीं है। एकाएक दोपहर के वक़्त रास्ते में ज़ोरों का तूफ़ान आ गया। उसके वेग का क्या कहना है। ऐसा मालूम हुआ कि यह तूफ़ान दूर के पहाड़ों को भी उड़ा ले जायगा। रास्ते में इसी तरफ़ दोनों ओर बालू के छोटे-छोटे टीले मिले जिन पर छोटे-छोटे दो-एक पेड़ थे। किन्तु विचित्रता यह थी कि उस आँधी में न तो बालू का एक कण ही उड़ता था और न पेड़ का पत्ता ही टेढ़ा हो रहा था। ऐसी अजब आँधी ज़िन्दगी में कभी नहीं देखी। रास्ते में एक किनारे बैठकर टीले की बालू और वृक्ष की जाँच-पड़ताल करने लगे तो देखा कि अब हमको भी हवा नहीं लगती। यह देखकर सभी नीचे

बैठ गये और यों आँधी से बचाव हो गया। तिब्बत में कभी-कभी ऐसी भुतही आँधी चलती है। इस आँधी का ज़ोर ज़मीन के ऊपर दो हाथ तक नहीं रहता—उसके ऊपर रहता है! रास्ते में दो बार और इसका सामना करना पड़ा था। तब ज़मीन में लेट जाने पर बचाव हुआ।

कोई डेढ़ घण्टे में आँधी का ज़ोर घट जाने पर हम लोग फिर आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर एक नदी के किनारे पहुँचे। यह भी जमकर बरफ़ हो गई थी। इसलिए इसे पैदल चलकर पार कर लिया। लेकिन बरफ़ पर बार बार पैर फिसलकर गिरने से तीनों आदमियों की बड़ी दुर्गति हुई। खच्चर के एक पैर में मोच आ गई। टट्टू पर लकड़ी की काठी कसकर सवारी करने से उसकी पीठ में बड़ा सा घाव हो गया था। अब इन दो-दो बीमार चौपायों के लिए क्या किया जाय, कुछ समझ में न आया। जिस देश में मनुष्यों के लिए ही डाक्टर नहीं मिलता उस देश में पशुओं का डाक्टर कहाँ! लेकिन भूल गया था कि साथ में एक अजीब डाक्टर है। शाम के लगभग एक गाँव में पहुँचते ही बेवक़ूफ़ टट्टू के लिए ओषधि मोल ले आया। दवा की डिबिया का ढक्कन खोलकर देखा, उसमें जूते की पालिश थी। अब होशियार डाक्टर की तरह घाव पर पालिश का लेप चढ़ाकर वह दूर खड़ा-खड़ा टट्टू की उछल-कूद देखने लगा। समझ में नहीं आया कि उस समय उस भूत को क्या कहूँ। उसकी चपटी नाक को और भी चपटी कर देने की इच्छा होने लगी। लेकिन वह इसलिए बच गया कि हमने उसे अपना मालिक बना रक्खा था। उस रात को एक सराय में जाकर टिके। अगले दिन कुछ अँधेरा रहते-रहते गठरी-पोटली बांध-बूँधकर हम लोग वहाँ से रवाना हुए।

दिन भर चलने पर कुमा गाँव के पास पहुँचते ही शाम हो गई। थकावट भी आ गई। फिर भी गाँव के पास टिकने की हिम्मत नहीं हुई। कुमा गाँव में पशम का ख़ासा कारबार होता है। वहाँ तिब्बती पुलिस की भी कमी नहीं है। अगर उन लोगों ने पहचानकर पकड़ लिया तब तो सब चौपट हो जायगा। इसके सिवा गाँव में घुसते ही एक और मुशकिल हुई। यह थी पालतू कुत्तों की। हर एक घर के दरवाजे पर बाघ की तरह तेज़-तर्रार एक-एक कुत्ता बँधा हुआ था। हम लोगों को देखते ही कुत्ते मारे ग़ुस्से के इतने ज़ोर से भूँकने लगे कि कान के पर्दे फटे जाते थे। रास्ते के कुत्तों ने भी पीछा करके हमें खदेड़ा। उनसे छुटकारा पाने के लिए हम लोगों को एक तरह से भागते जाना पड़ा। इस पर एक कठिनाई और हुई। गाँव के कुछ आदमी उसी ओर से चले आ रहे थे। वे लोग हमारे सामने खड़े होकर सैकड़ों प्रश्न करने लगे। कुमा गाँव से बहुत दूरी पर चिगाची नाम का नगर है। इन दोनों के दर्मियान कोई गाँव नहीं है—यह फ़िज़ूल बात भी उन लोगों ने कही। हमारे मालिक ने एक ही बात में उन सब के प्रश्नों का उत्तर दे दिया—"चिगाची में हमें ज़रूरी काम है।" अब उसने हमारी ओर मुँह करके कहा कि झटपट आगे बढ़ो। उसने अपने टट्टू को भी हाँक दिया। यों अवहेला की जाने से वे लोग हम सब पर नाराज़ हो गये। अगर थोड़ी देर तक और बातचीत की जाती तो शायद वे धौल-धप्पड़ भी जमा देते। लेकिन यहाँ तक नौबत नहीं आई। हम लोग फुर्ती से गाँव के बाहर चले आये। हम लोगों ने वह रात मैदान में ही काटी। ठण्ड और अन्धड़ में हमें जैसा कष्ट सहना पड़ा उसको कहाँ तक कहा जाय।

इस गाँव के बाद रास्ता और देश और ही तरह का हो गया। छोटे-बड़े अनेक आकारों के पहाड़ों और ऊँचे नीचे रास्ते पर चलने लगे। मैदान में घास और पहाड़ों पर छोटे-छोटे पेड़-पौदे देखने से आँखों को तरी पहुँची। न जाने कब से इनको नहीं देखा। तीन-चार बार ब्रह्मपुत्र नद को पार करना पड़ा। भारतवर्ष में इसका भारी रूप देखने से डर के मारे दिल दहल जाता है। वहाँ उसका कैसा काला रङ्ग और कितनी गहराई है और यहाँ पर तो उसमें एक तरह से जान ही नहीं है, आकार भी बहुत क्षीण है। तिब्बतवाले इसे पैरों पैरों पार कर लेते हैं। हम भी इसी तरह पार हुए। ब्रह्मपुत्र ही तिब्बत की असली नदी है। इसमें और भी कितनी ही नदियों का पानी मिल गया है। यह नद मानस सरोवर से निकला है। बहुत इच्छा होने पर भी उस समय हम मानस सरोवर के दर्शन नहीं कर सके।

तिब्बत के मार्ग में जिस प्रकार गाड़ियाँ नहीं हैं इसी प्रकार वहाँ की नदियों में नावें भी नहीं चलतीं। कोई चाहे तो वहाँ के रास्तों पर गाड़ी चला सकता है और ब्रह्मपुत्र में नावें भी। एक कठिनाई ज़रूर है; उस देश में लकड़ियाँ नहीं होतीं। तब गाड़ी या नाव बनाई किस तरह जाय? एक जगह देखा कि ब्रह्मपुत्र का पाट ख़ासा चौड़ा है। वहाँ पर ठण्ड भी कुछ कम थी। पानी भी जमकर बरफ़ नहीं बन गया था। एक आदमी लोगों को नाव में सवार कराकर इस पार से उस पार ले जाता था। किन्तु जिसमें लोगों को बिठाकर वह पार ले जाता था उसे नाव कहना ठीक नहीं। अगर उसे नाव न कहें तो फिर कहें ही क्या? इतने देशों की सैर की है, लेकिन ऐसी चौकोनी चमड़े की नाव कहीं नहीं देखी। उस पर सवार होने में भी डर लगता था।



चौकोनी चमड़े की नाव

अगर तली फँस जाय तो क्या हो। हमारा मालिक बड़ा हिम्मती था। जब वह मुँह फुलाकर उसमें सवार हो गया तब हम लोगों को भी जाना पड़ा। मल्लाह ने हमें आसानी से पार उतार दिया। तिब्बत इतना बड़ा देश है, फिर भी उसमें यही एक नाव चलती है। तिब्बत में बहुत से मन्दिर और मठ सरोवरों के बीच में हैं। उन मन्दिरों और मठों में केवल जाड़े के दिनों में ही मनुष्य पहुँच सकता है। जब सरोवर का पानी जमकर बरफ़ हो जाता है तब बरफ़ के ऊपर चलकर ही मनुष्य मन्दिर में पहुँच पाता है। ऐसे सरोवरों के बीच बने हुए दो-तीन मन्दिर भी हमने देखे थे। एक सरोवर में तो हमारी आँखों के आगे ही दो यात्री डूबकर मर गये। कोई उनको नहीं बचा सका। दोनों यात्री बरफ़ के ऊपर चलते-चलते सरोवर के बीच में कुछ दूर पहुँचे ही थे कि उनके बोझ से बरफ़ की तह टूट गई और वे उसमें गड़गप्प हो गये। उनके पैरों के नीचे पल भर में गड्ढा सा हुआ और वे उसमें ग़ायब हुए। वहाँ उनके लिए हाथ-पैर हिलाकर बचाव करने की भी तो गुञ्जाइश न थी। पानी इतना ठण्डा था कि उसमें गिरते ही हाथ-पैर अकड़कर सुन्न हो जाते थे। ख़बर मिली कि वहाँ हर साल इसी तरह कितने ही आदमी मर जाते हैं।

उस दिन एक गाँव में पहुँचते-पहुँचते दोपहरी हो गई। धूप इतनी तेज़ थी कि उसमें चलना कठिन हो गया। बीच-बीच में ऐसा जान पड़ने लगा कि अब जलकर भस्म हो जायँगे। हमारे यहाँ की जेठ-बैसाख की दोपहरी उसके आगे कोई चीज़ नहीं। लाचार होकर गाँव की सराय में टिकना पड़ा। प्यास के मारे गला सूखा जा रहा था। किन्तु वहाँ के लोग निरा पानी नहीं पीते—केवल चाय पीते हैं। बहादुर ने

चाय बनाई। लेकिन वह भी नसीब नहीं हुई। थोड़ी ही देर में पतली चाय जमकर कड़ी बरफ़ बन गई। गरम चाय पीने जाकर बरफ़ से दाँत टकराने लगे। हम न समझते थे कि तिब्बत में ऐसी गरमी पड़ती होगी। घर के बाहर तथा भीतर तापमान का इतना अन्तर भी पृथिवी के सात आश्चर्यों में से एक है।

चाय के बरफ़ हो जाने का ज़िक्र करते समय चाय की ईंट की याद आ गई। ईंट को या तो धूप में सुखाकर कड़ा किया जाता है या आग में सेंक लिया जाता है। किन्तु किसी ने कभी सुना तक न होगा कि चाय की ईंट भी बनाई जाती है। हमने अपनी आँखों ऐसी ईंटें देखी हैं और उबालकर उनका उपयोग भी किया है। तिब्बत में चाय की खेती नहीं होती—वहाँ तो यह चीन से आती है। सुरागौ के गोबर के साथ सूखी चाय की पत्तियाँ मिलाकर चीनी लोग ईंटें बना देते हैं। यही ईंटें तिब्बत को भेज दी जाती हैं। इन ईंटों का रङ्ग कुछ कुछ बादामी होता है। तिब्बती लोग इन्हीं को तोड़कर पानी में उबालते और पीते हैं।

इस गाँव में एक घण्टे आराम करके आगे बढ़े। पहाड़ी देश है। नदियाँ तो न जाने कितनी पार करनी पड़ीं। रास्ते में कुछ झरने भी मिले। उनमें दो का पानी खासा गरम था। एक के पानी में नहा लेने से फुंसियाँ मिट जाती हैं। लेकिन तिब्बती लोग तो नहाते धोते हैं ही नहीं, इसलिए इसका पानी लगने से अगर फुंसियाँ बढ़ें भी तो उनका क्या नुक़सान! हमको उस पानी में नहाने की बहुत इच्छा हुई। नहा लेने से जूँ मर जातीं। कई मील आगे जाने पर एक ठण्डे पानी का चशमा मिल गया। उसका बर्फ़ की तरह ठण्डा पानी

ज़मीन फोड़कर बाहर निकलता और कई हाथ की दूरी पर एक गड्ढे में साँप की तरह फिर पातालपुरी में समा जाता था। मानों वह नाग-कन्याओं को भूलने के लिए तैयार न था।

अब दिन डूबते समय एक छोटा सा गाँव दिखाई दिया। इसके बाहर एक ठण्डे पानी का झरना था। गाँववाले इस झरने का ही पानी पीते थे। देखा कि दो किसान उस झरने के किनारे बैठे-बैठे भेड़ की सूखी टाँग को छुरी से काटते और नमक मिलाकर खा रहे हैं। तिब्बती लोग कच्चा ही मांस खा जाते हैं, इसलिए वे उसको भूनने या उबालने के झंझट में नहीं पड़ते। मामूली तौर पर सुरागौ या भेड़ का मांस ही उनकी ख़ुराक है। इस मांस को बाहर ठण्डक में कई महीने रख छोड़ते हैं। धूप और ठण्ड में रक्खे रहने से उसकी जो हालत होती है उसको न कहना ही अच्छा। उस आधे सूखे और आधे सड़े मांस को तिब्बती लोग, किसी अच्छी चीज़ की तरह, तारीफ़ कर करके खाते हैं। तिब्बती लोग झील के किनारे से नमक बटोर लाते हैं। इसके लिए उन्हें पैसा-कौड़ी ख़र्च नहीं करनी पड़ती। उनकी देखादेखी हम लोग भी खाने को बैठ गये। खाना-पीना ख़तम होते ही शाम हो गई। इसके बाद दोनों तिब्बतियों के उठकर चल देने पर झरने के पास एक बड़े से पत्थर की ओट में हम लोगों ने रात बिताने का इन्तज़ाम किया।

दो दिन से हम जिस रास्ते पर चल रहे थे वह चिगाची नगर का असली रास्ता नहीं है। सब लोग इस रास्ते से आते-जाते नहीं हैं। पकड़े जाने के डर से ही हम इस रास्ते से चल रहे थे। अब लाचार होकर असली रास्ते पर आना पड़ा। वह गाँव के पास

होकर ही चिगाची की ओर गया है। दूसरे दिन, सबेरा होने से कुछ पहले ही, उठ बैठे और गाँव को पार करके डरते-डरते असली रास्ते पर आये। उस समय कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। हवा नाम लेने को भी न थी। घना कुहरा फैला हुआ था। गुलूबन्द से नाक, कान और मुँह को ढक लिया; सिर्फ़ आँखें खुली रक्खीं। फिर भी ठण्ड दूर नहीं हुई। सोचा था कि उस समय हम लोगों की तरह और किसी को रास्ता चलने की ग़रज़ न होगी लेकिन राजदूत के लिए समय-असमय क्या? बन्दूक़ और तलवार लिये हुए दो डाकवाले टट्टुओं पर डाक लादे हुए हमारे पास से तेज़ी से गुज़रे। आगे कुछ मुसाफ़िर भी बातचीत करते हुए चिगाची की ओर जा रहे थे। रास्ते में साथी मिल जाने से बड़ी ख़ुशी होती है; लेकिन यह तो ऐसा देश है जहाँ मनुष्य को देखने से ही हमें डर लगता है। जान पड़ता है, अब गिरफ़्तार हुए, अब डकैतों के हाथ मारे गये। डरते-डरते उन्हीं लोगों के पीछे चलने लगे। पूर्व दिशा में थोड़ा-थोड़ा उजेला होने लगा लेकिन कुहरे के मारे ज़्यादा दूर तक दिखाई नहीं पड़ता था। एकाएक हमारी दाढ़ी कुछ वज़नी मालूम होने लगी। मामले को समझने के लिए तनिक सा माथा झुकाते ही दाढ़ी से पट-पट आवाज़ हुई। अचंभे में आकर गुलूबन्द को हटाया और दाढ़ी पर हाथ फेरा तो देखा कि दाढ़ी पर बर्फ़ जमकर लटक रही है। यह क्या हो गया? ऐसा तो कभी सुना नहीं। दाढ़ी को पकड़कर हिलाते ही बर्फ़ झड़कर गिर पड़ी। हम इसका कारण ढूँढ़ने लगे। अन्त में यह समझ में आ गया कि हमारी साँस के साथ निकली हुई भाफ ठण्ड के मारे दाढ़ी पर जम गई थी।



दाढ़ी में बर्फ़ जम गई है

इसके बाद चिगाची के पास आने पर एक बार यह भ्रम हो गया कि किस रास्ते से चलना चाहिए। बात यह थी कि एक जगह रास्ता दाहने और बायें दोनों ओर को गया था। हम लोग बाईं ओर कोई कोस भर तक गये; लेकिन समझ में न आया कि हम कहाँ को जा रहे हैं। इसी समय चिगाची को जानेवाले एक बटोही से भेंट हो गई। उसने हम लोगों को लौटकर उसी दाहनी ओरवाले मार्ग से जाने को कहा। हमको अपना साथी पाकर उसने बड़ी ख़ुशी ज़ाहिर की। वह हमसे हेल-मेल करने को बहुत उत्सुक हुआ। हमारा मालिक बेवक़ूफ़ टट्टू पर सवार है। इतने बड़े आदमी के साथ वह किस तरह बात-चीत करे। हम कुली हैं और वह किसान है। इसलिए दोनों में ख़ूब पटेगी। इसी लिए उसका इतना आग्रह हुआ; लेकिन हम डर गये। चेहरे से हमें भले ही न पहचान पावे लेकिन दो-चार बातें करते ही उसे हमारी असलियत का पता चल जायगा। बुरे फँसे। इसी समय हमको एक उपाय सूझा। झटपट दोनों हाथों से पेट दाबकर रास्ते में एक जगह बैठ गये। बहादुर ने मामला भाँप लिया। उसने बेवक़ूफ़ को आवाज़ दी—"कुली के पेट में दर्द है; ज़रा ठहरिए।" मालिक ने चिढ़कर हमको गालियाँ दीं और टट्टू को रोक लिया। हम लोगों की कठिनाई को देखकर मुसाफ़िर आगे बढ़ गया। उसके चले जाने पर हम लोग फिर रवाना हुए और उसी दिन, सन्ध्यासमय, चिगाची पहुँच गये।

चिगाची तिब्बत के तीन-चार बड़े बड़े शहरों में से है। यहाँ पर ताशी लामा रहते हैं। दलाई लामा की तरह इनकी भी ख़ासी इज़्ज़त है। हम अगले दिन जिस समय नगर की ख़ास-ख़ास जगहें देखते

हुए घूम रहे थे उसी समय देखा कि ताशी लामा एक ख़ास क़िस्म की पालकी में बैठे चले आ रहे हैं। उनके आगे-पीछे, अगल-बग़ल, ढाल-तलवार, बन्दूक़ और भाले लिये हुए घुड़सवार और पैदल सिपाही "हटो, बचो" कहते हुए चले जा रहे थे। हम लोग मारे डर के एक ओर हट गये और महाराज को जाने के लिए रास्ता देकर, जीभ निकालकर, खड़े हो गये। यहाँ पर ग़रीब लोग बड़ों का सम्मान इसी तरह करते हैं।

चिगाची कुछ बड़ा भारी नगर नहीं है। न्याँग नदी और ब्रह्मपुत्र के सङ्गम के कुछ समीप ही पहाड़ पर यह शहर आबाद है। शहर के क्या तो बड़े रास्तों और क्या गलियों में सब जगह धूल और कूड़े-कचरे के ढेर लगे रहते हैं। बड़ी गन्दगी है। इस गन्दगी को खींच-खाँचकर कुत्ते बस्ती में फैलाते रहते हैं। इससे शहर और भी बुरा लगता है। बस्तीवाले भी गन्दे और सुस्त हैं। शहर को देख-भालकर मूर्ति के दर्शन करने के लिए हम एक मन्दिर में गये। मन्दिर के बाहर कई एक 'मानियाँ' रक्खी हुई थीं। तिब्बतियों का विश्वास है कि मानियों को घुमा देने से पाप कट जाते हैं। इसी से बेवक़ूफ़ ने मानियों को घुमाकर अपना पाप धो बहाया। बेवक़ूफ़ की देखादेखी हमने और बहादुर ने भी मानियों को एक एक बार घुमा दिया। मन्दिर में बुद्ध की बढ़िया मूर्ति थी। उसके आगे एक बहुत बड़ा दिया जल रहा था। तिब्बत में तेल तो होता नहीं, इसलिए दिये में मक्खन जलाया जाता है। इस दिये में मक्खन ही था। भीतर मक्खन के जलने की सुगन्ध महक रही थी।

मन्दिर के बाहर आकर शहर की सरहद पर चीनी लोगों का समाधिस्थान देखा। पहले इस शहर में बहुतेरे चीनी रहते थे।

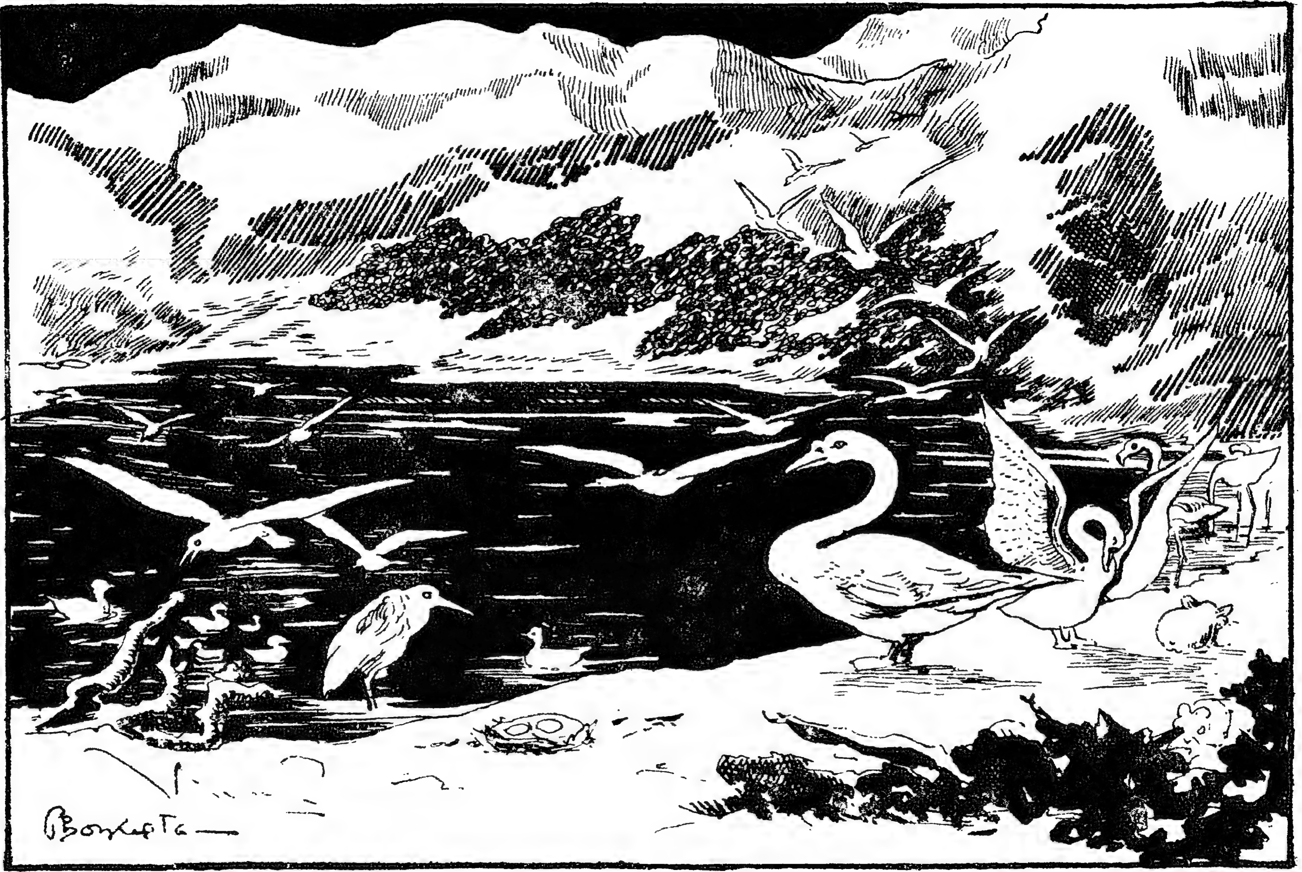
तिब्बती लोग साधारणतः अपने मुर्दों का अन्तिम संस्कार बीभत्स रीति से करते हैं। लामाओं की लाशें दवाइयाँ लगाकर मठ में पूजा के लिए रख ली जाती हैं। छोटे लामाओं और धनवान् बड़े आदमियों की लाशें समाधिस्थ कर दी जाती हैं सही, किन्तु उसमें बहुत खर्च करना पड़ता है। इसलिए साधारण श्रेणी के मुर्दे काट-कूटकर कौओं, गीधों और कुत्तों आदि को खिला दिये जाते हैं। तिब्बतवालों का विश्वास है कि गीध और कौवे मुर्दे को खा लेते हैं तो उसका पुनर्जन्म होता है, इसी से वे लोग मुर्दे को एक बड़े से पत्थर पर फैलाकर रख देते हैं और फिर उसकी बोटी-बोटी काटकर गीध-कौओं को खिला देते हैं। इस भोज में सबसे पहले झुण्ड का सबसे बड़ा गीध खाने को पाता है। यह सब देख-भालकर किसी तरह रात काटी और तड़के लासा के लिए रवाना हो गये।

लासा नगर अब भी दूर था। लेकिन चिगाची के बाद से ही लासा का रास्ता ख़ूब चलने लगता है। काश्मीर और दार्जिलिङ्ग आदि विभिन्न प्रदेशों के सौदागरों के झुण्ड इसी रास्ते से माल लेकर आया-जाया करते हैं। लासा के जितने समीप पहुँचते जाओ, उतना ही यह मालूम होने लगता है कि तिब्बत में भी आलू, मटर आदि की उपज होती है, जङ्गल में रङ्ग-बिरङ्गे फूल खिलते हैं और हरे-भरे मैदान हैं। इस ओर छोटी-छोटी नदियाँ और पहाड़ बहुतायत से हैं। कई एक सरोवर भी हैं। इसी भाग में तिब्बत की सबसे बड़ी झील यामद्रु है।

अब हम फिर न्याँग नदी के पुल से पार होकर लोगों के डर से बड़े रास्ते से न चलकर कुराह से ही चले। यह रास्ता कहीं पहाड़ के

ऊपर, कहीं नीचे उतरकर, कहीं उपत्यका में हो चक्कर खाता हुआ गया है। बीच-बीच में दो-एक मन्दिर अथवा चोरतेंग हैं। मन्दिर में बटियों के बड़े-बड़े ढेर लगे हैं। कौन जानता है कि उनके नीचे चोरतेंग की मूर्ति कब दब गई है। हमने भी कुछ बटियाएँ फेंककर देवता को माथा झुकाया। उस दिन थोड़ा ही रास्ता तय कर पाये। खच्चर लँगड़ाने लगा। इधर कई दिनों से वह बहुत दुबला हो गया है। वह पेट भरकर खाता भी नहीं। हालत देखकर ऐसा जान पड़ा कि शायद वह लासा के रास्ते में ही हमारा साथ छोड़ देगा। उसने इतने दिनों तक हमारा साथ दिया है। हमारे लिए उसने बड़ी मुसीबतें झेली हैं। जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। शाम को एक गाँव के पास पहुँचते ही वह मर गया। हम लोग थोड़ी देर तक उसके आस-पास चुपचाप खड़े रहे, फिर गाँव से चलते हुए। तब से हमें और बहादुर को उसकी कमी बहुत खलने लगी। उस पर जो बोझ लदा हुआ था वह हमें और बहादुर को पीठ पर लादकर चलना पड़ा।

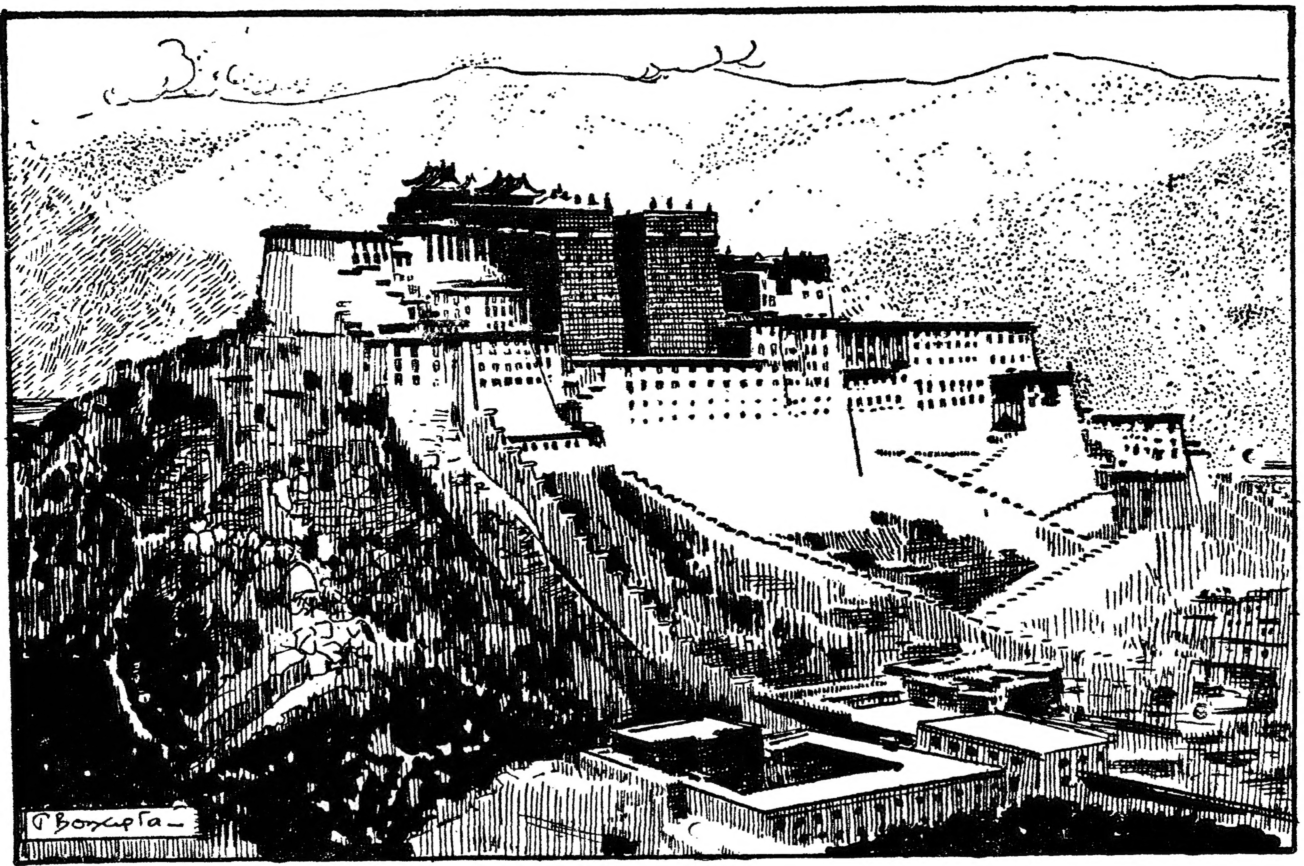
वह रात गाँव के बाहर पहाड़ पर बिताकर हम जब रवाना हुए तब कुछ दिन चढ़ आया था। दो पहाड़ों को पार करके फिर ब्रह्मपुत्र पर पहुँचे। इस जगह को ब्रह्मपुत्र की उपत्यका कहते हैं। उसकी सुन्दरता का क्या कहना है। उपत्यका के बीच में नदी की माला और झाड़-झंखाड़ है और दूर सरहद पर धुएँ की तरह पहाड़ की दीवार है। रात इसी उपत्यका में बिताई। दूसरे दिन चलते-चलते यामद्रु झील के किनारे पहुँचे। उसे झील नहीं, छोटा सा समुद्र कहना चाहिए। उसका जल काँच की तरह साफ़ है, लेकिन उसमें तरङ्ग नाम लेने को भी नहीं। उसके शान्त स्थिर पानी में पहाड़ और नीले



यामद्रु झील का एक हिस्सा

आकाश की नीली छाया प्रतिबिम्बित थी। तली में तरह-तरह की, छोटी-बड़ी, मँझोली मछलियाँ खेल रही थीं। झील के किनारे बत्तकों की क़तार पंख फड़फड़ा रही थी और कीच लिपटी चोंच बढ़ाये हुए घूम रही थी तथा तपस्वी बगला ध्यान लगाये हुए था। खंजन की पूँछ के हिलने-डुलने और जलपिपि के गान ने देश की याद दिला दी। फिर देखा कि किनारे पर झाड़-झंखाड़ में गीदड़, भेड़िये और खरगोश अपने दाव-पेंच दिखला रहे थे। वहीं दुमकटे चूहों का झुण्ड घूमता-फिरता, ठहरता-चलता आपस में न जाने क्या बातें कर रहा था। शायद हम लोगों की ही चर्चा हो रही हो। झील के किनारे-किनारे ही हमारा रास्ता है।

अब बड़े रास्ते पर चले बिना गुज़र नहीं। लासा के जितने ही पास पहुँचते जाते हैं उतना ही हमें डर लगता है और .खुशी भी होती है। लासा के चारों ओर जासूस लोग दिन-रात चौकन्ने रहते हैं, खासकर चुसुल में। यदि इस जगह से निकल गये तो फिर लासा पहुँचने में कठिनाई न होगी। यहाँ पुलिस की कड़ी नज़र रहती है। प्रायः हर एक बटोही की जाँच-पड़ताल की जाती है। शाम के लगभग धड़कते हुए दिल से हम चुसुल में पहुँचे। पहुँचते ही चारों ओर से पुलिसवालों ने घेर लिया। वे लोग तलवार और बन्दूक़ लिये हुए थे। उनकी दृष्टि से कठोरता प्रकट होती थी। एक सिपाही हमारी ओर घूरकर देखने लगा, लेकिन बोला कुछ नहीं। फिर, न जाने क्यों, हम लोगों को अच्छी तरह बिना ही जाँचे छोड़ दिया। हम चाहते भी यही थे। पुलिस से छुटकारा पाते ही चटपट हमने चुसुल के बाहर आकर दम लिया।



दलाई लामा का महल—पोतला

सबेरे दिन भर चलते रहे। सामने पहाड़ ही पहाड़ थे। अन्त में एक गाँव में रात बिताकर फिर चल पड़े। कुछ पहाड़ों को पार करते ही दिन चढ़ गया। एक पहाड़ के ऊपर धुँधला सा एक नगर देख पड़ा। सोचा कि शायद यही लासा है। ख़ुशी से "लासा लासा" कहते ही बेवक़ूफ़ ने कहा—"यह लासा नहीं, ड्रीपाँग मठ है। इस मठ में १०००० बौद्ध संन्यासी रहते हैं। ये लोग युद्ध करने में कुशल हैं। यह तिब्बत का सबसे बड़ा मठ है।" बेवक़ूफ़ की यह बात सुनने से हमारा हौसला पस्त हो गया।

अगले दिन एकाएक की नदी मिली। लासा नगर इसी नदी के तट पर आबाद है। ख़ुशी के मारे तनिक फुर्ती से नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। यहाँ पर देश भी कुछ का कुछ हो गया। चारों ओर छोटे-छोटे जलाशय थे। बीच-बीच में खेतों में फ़सलें खड़ी थीं। रास्ते के इधर-उधर छोटे-छोटे मठ भी बहुत मिले। और पहाड़ों का क्या कहना है। एकाएक एक जगह पर नदी घूमकर दहनी ओर को मुड़ गई है। उसके साथ ही रास्ता भी मुड़ गया। नदी के इस मोड़ को तय करते ही दूर एक नगर का धुँधला सा चित्र हमें दिखाई दिया। मन मस्त हो गया। इस दफ़ा मन की बात को मुँह से प्रकट नहीं किया। उस चित्र की ओर नज़र किये हुए हम फुर्ती से आगे बढ़ने लगे। लेकिन उस चित्र के साफ़ होने से पहले ही बीच में एक पहाड़ आ गया।

अब दिन डूबने पर था। हम तीनों आदमी पहाड़ की चोटी के ऊपर चढ़ने लगे। रास्ता धीरे-धीरे पतला होता जाकर एक जगह एक मन्दिर की ओट में छिप गया। यहाँ पहुँचने से पहले ही टट्टू का पैर फिसल गया। वह जो तनिक नीचे जाकर गिरा सो फिर नहीं उठा।

यही एक जानवर बचा था सो वह भी गया। इसके मरने का दुःख हुआ। लेकिन ठहरने को वक़्त नहीं था। शाम हो रही थी। टट्टू की लाश की ओर से दृष्टि हटाकर फिर पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। चोटी पर पहुँचकर मन्दिर की बग़ल से घूमते ही सारा शहर सामने साफ़ दिखाई देने लगा। वही तो लासा है! नगर के एक ओर एक पहाड़ के ऊपर दलाई लामा का ऊँचा महल है—नाम है पोतला। वह शाम के धुँधले उजेले में मानो सो रहा है। मन्दिर से एक रास्ता उतरकर क्रमशः चौड़ा होता हुआ सीधा महल तक चला गया है। शहर में उस दिन जलसा था। रास्ते में भीड़ ही भीड़ थी।

हम तीनों थके हुए परदेशी बटोही उस पहाड़ की चोटी पर खड़े-खड़े थोड़ी देर तक नगर की ओर आँखें फाड़कर देखते रहे। धीरे-धीरे शाम का अँधेरा शहर के ऊपर फैलकर उसे छिपाने लगा। अब और बाट जोहना व्यर्थ समझकर पीठ पर भारी बोझ लादे हुए हम तीनों पहाड़ से उतरकर धीरे-धीरे शहर के रास्ते पर चलने लगे।

इसके बाद जब बस्ती में पहुँचे तब देखा कि जलसे के नाच, गाने, रोशनी और आतशबाज़ी की चारों ओर धूम मची हुई है। लेकिन अब इन बातों से क्या?

——